एम.ए.एच.वाई–117 भारतीय अर्थव्यवस्था विकास के चरण (1206 ई0–1947 ई0 भाग–02)

खण्ड – 1 औपनिवेशिक कम्पनियाँ एवं क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था

इकाई प्रथम – भारतीय व्यापार तंत्र पर पुर्तगाली एवं डच कम्पनी का प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 पुर्तगाली समुद्री साम्राज्य

1.2.1 पुर्तगालियों का व्यापार

1.2.2 पुर्तगालियों के आगमन से भारत पर प्रभाव

1.2.3 पुर्तगालियों का व्यापारिक नियंत्रण

1.2.4 पुर्तगाली अधिपत्य का मूल्यांकन

1.3 डच आधिपत्य की अवस्था

1.3.1 डच व्यापार की प्रकृति और स्वरूप

1.3.2 डच कारखानों की प्रशासनिक कार्यप्रणाली

1.3.3 डच साम्राज्य का भारतीय समाज और राज्य पर प्रभाव।

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 स्वमूल्यांकन प्रश्न

1.7 सन्दर्भ उपयोगी पुस्तकें

1.8 अभ्यास कार्य प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

1.0 प्रस्तावनाः–

वास्को–डि–गामा का अभियान जो आशा अंतरीप का चक्कर लगा कर मई, 1498 में कालीकट पहुंचा, वह अनेक लक्ष्यों प्रेरित था। पुर्तगाली सम्राट डी. मैन्यूक्ल (1495–1521) का भारत की तरफ एक सीधा समुद्री मार्ग खोलने का उद्देश्य मुख्यतः व्यापारिक था हालाँकि यह ईसाई धार्मिक विचारधारा जिसमें धर्मान्तरण के लक्ष्य पर बल दिया से भी दम रूप से प्रेरित था। पुर्तगालियों का मौलिक उद्देश्य स्वयं को और अपने राज्य को यूरोप के साथ होने वाले मसालों के व्यापार पर, जो उस समय का एक लाभप्रद व्यापार था, अपना एकाधिकार स्थापित करके समृद्ध बनाने का था। कोचीन और कन्नानोर में किले स्थापित किये गये।

पहले पुर्तगाली वायसराय, फ्रांसिस्को – 3– अल्मीड़ा जो 1505 में आये, भारत में पुर्तगालियों की व्यापारिक और क्षेत्रीय योजनाओं को आगे बढ़ाने में ज्यादा सफल नहीं हुये।यह अल्फोन्सो डी अल्बुकर्क (1509–15) थे जिन्होंने पुर्तगालियों की भौगोलिक – राजनैतिक योजनाओं को स्वरूप प्रदान किया। उसने भारत में कई बंदरग्राह शहरों, हिंद महासागर में कई द्वीपों पर कब्जा किया। 1510 में गोवा और इसके बाद 1511 में मलक्का पर अधिपत्य स्थापित किया 1515 में फ्रांस की घाटी के मुहाने पर हारमूज पर कब्जा किया गया। इन अधिग्रहणों का कुल क्षेत्रीय विस्तार और छोटा था लेकिन उनका काफी सामरिक महत्व था 1518 में श्रीलंका में कोलम्बों का किला स्थापित किया गया। 1530 में गोवा भारत में पुर्तगाली व्यापारिक ''साम्राज्य'' की राजधानी बन गया।

पुर्तगालियों ने गुजरात से होने वाले व्यापार पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए दियू, दमन और बेसिन पर और मालाबार से होने वाले व्यापार पर नियंत्रण करने के लिए कोकणा और मालाबार के तटों पर अधिकार कर लिया। सोलवीं सदी के अंत तक उनके अधिकार में करीब 50 किलो और 100 समुद्री जहाजों का शक्तिशाली नौसैनिक बेड़ा था। व्यापारिक और क्षेत्रीय ''साम्राज्य'' स्थापित करने की इस प्रक्रिया में कई बार स्थानीय शासकों ने पुर्तगालियों की मदद की। उदाहरण के लिए अपने संकेतिक अधिपति कालीकट के जमोरिन की अपेक्षा अपनी स्वयं की शक्ति बढ़ाने के लिए कोचिंग का राजा पुर्तगालियों की कठपुतली बन गया। पुर्तगालियों के व्यापारिक और नौसैनिक जहाजों पर स्थानीय लोगों में से नियुक्त किए गए नाविक दल और सैनिक को ही आशिक रूप से तैनात किया जाता था।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि –

- पुर्तगाली भारत में कब और क्यों आये।
- पुर्तगाली साम्राज्य कहाँ तक फैला हुआ था।
- पुर्तगालियों के आगमन से भारत पर क्या प्रभाव पड़ा।
- डच व्यापारी भार में क्यों आये।

- डच कारखानों की कार्य प्रणाली के बारे में।

1.2 पुर्तगाली समुद्री साम्राज्य (1500–1640) :–

पुर्तगाली साम्राज्य एक क्षेत्रीय शासन प्रणाली नहीं था बल्कि एक ऐसा सामुद्रिक तंत्र था जिसके अंतर्गत पुर्तगाली राजा के अधीन एशिया और पूर्व अफ्रीका के क्षेत्र , संस्थाये, समुद्री जहाज ओर प्रशासनिक व्यवस्थाएं थी। लिस्बन में कासा डा इंडिया, एक शाही व्यापारिक कंपनी इस समुद्री ''साम्राज्य'' का नेतृत्व करती थी। राजा के अतिरिक्त, यूरोप के विभिन्न देशों के व्यापारी पूंजीपति और महाजन भी कासा डा इंडिया से संबंधित थे। वे एशिया से वापस आने वाले जहाज माल के प्राप्ति और पहुंचने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। एशिया में यह गतिविधि एक प्रशासनिक व्यवस्था, एसटाडा डा इंडिया (भारत में राज्य) के नियंत्रण में थी। इसका नेतृत्व गोवा का वायसराय करता था जो पूर्वी अफ्रीका से मोलुक्का और मकाओ तक के पूरे साम्राज्य के नागरिक और सैन्य प्रशासन का अध्ययन था। और केवल राजा के प्रति उत्तरदाई था। वायसराय के द्वारा उसकी इच्छा अनुसार कुछ विशेष सामान्य सैन्य मसालों पर सलाह के लिए अनौपचारिक समिति का अधिवेशन बुलाया जाता था और ये वायसराय की मदद करती थी। प्रारंभ में, इनकी कोई स्थाई सदस्यता या मामलों के संचालन के लिए कोई कार्य प्रणाली नहीं थी। लेकिन धीरे–धीरे इन समितियों के संस्थागत रूप ले लिया। इनके सदस्यों में वायसराय के अलावा जो अध्यक्ष के रूप में काम करता था, गोवा का आर्क बिशप, मुख्य धर्म परीक्षक गोवा के कुछ कुलीन निवासी या महत्वपूर्ण फिदालगो, गोवा शहर का कैप्टन, उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश तथा मुख्य वित्तीय अधिकारी सम्मिलित थे। एक नगर समिति भी थी जो गोवा का प्रशासन का कार्य देखती थी और जिसका चुनाव पुर्तगाली और यूरोपीय एशियाई आबादी द्वारा किया जाता था।

1.2.1 पुर्तगालियों का व्यापार

पुर्तगालियों का मुख्य उद्देश्य यूरोप के साथ होने वाले मसालों के व्यापार और एशिया में विभिन्न सुनिश्चित किए गए बंदरगाहों के बीच होने वाले व्यापार पर व्यापारिक एकाधिकार स्थापित करना था। ताकि इस पर लगाया जा सके और हिंदू महासागर में इसकी दिशा पर नियंत्रण रखा जा सके। कैप्टन और दूसरे पुर्तगाली निवासी अपने स्वयं के निजी व्यापार में भी लगे रहते थे। पुर्तगालीयों ने भारत में स्थानीय व्यापारियों के समुद्री व्यापार पर कर लगाकर और उसे नियंत्रण करके स्वयं को बनाएं और रखा। वास्तव में, सोलवीं सदी में पूरे साम्राज्य में सीमा शुल्क से प्राप्त राजस्व कुल राजस्व का 60 से 65ः भाग था। हम इसमें समुद्री व्यापार के नियंत्रण से हासिल राजस्व की कुछ अन्य मदे जैसे पकड़े गए एशिया जहाजों की लूट का माल, भी शामिल कर सकते हैं।

पुर्तगालियों द्वारा एशिया में तलाशी जाने वाली मद्दो में मसाले विशेषकर काली मिर्च प्रमुख थी। पुर्तगाली इसकी अधिकतर मात्रा मालाबार क्षेत्र से और बाद में कन्नड़ प्रदेश और दक्षिण पश्चिम तट से प्राप्त करते थे। 1506 में पुर्तगाल से भारत की ओर होने वाले बहुमूल्य धातुओं के व्यापार और भारत से पुर्तगाल को नियंत्रण करने वाले मसालों के व्यापार पर शाही एकाधिकार था। हालांकि नौसैनिक अधिकारियों और शाही लाइसेंस पाने वाले कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को उन मदो जिन पर शाही एकाधिकार था मैं निजी व्यापार करने की मंजूरी दी गई थी।

भारत से काली मिर्च प्राप्त क, जिसे सोलहवी सदी के मध्य तक एटवर्प और उसके बाद लिस्बन में अनुबंध के आधार पर बेचा जाता था। 1564 के बाद, राजा काली मिर्च के व्यापार पर एकाधिकार बनाए रखने में कामयाब नहीं रहा और निजी व्यापारिक हितों के साथ इसमें साझेदारी की गई। सन 1575 में काली मिर्च के व्यापार का शाही एकाधिकार 32 क्रुजाड प्रति क्विंटल की दर से आग्सबर्ग के व्यापारी कौनराड रोटेट को दिया गया। तत्पश्चात राजा ने कुछ और मिलान के व्यापारिक घरानों के साथ भी व्यवस्था की और साथ ही इस लाभप्रद व्यापार में अपना कुछ हिस्सा बनाए रखा। यह अनुबंध की व्यवस्था 1598 तक जारी रही परंतु समुद्रीय मसालों के व्यापार में ब्रिटिश और डच व्यापारियों की भारी चुनौती ने इस काली मिर्च के अनुबंध कर्ताओं के लिए घाटे का सौदा बना दिया। यहां तक कि 1628 में पुर्तगाली इंडिया कंपनी की स्थापना भी एक सफल प्रयोग नहीं था और कंपनी को 1633 में भग कर दिया गया।

एशिया से काली मिर्च तथा अन्य वस्तुओं की प्राप्ति के लिए पुर्तगाल से भेजे गए माल में बहुमूल्य धातुएं (पश्चिमी अफ्रीका सेना और अमेरिकी चांदी से बनाए गए सिक्के, रियाल) गैर–बहुमूल्य धातुएं जैसे तांबा, सीसा, टीन, पारा तथा कुछ मात्रा में मूंग, फिटकरी, शराब और जैतून का तेल आदि सम्मिलित थे। मूल्य की दृष्टि से तांबा अन्य गैर–बहुमूल्य धातुओं में काफी समय तक सबसे महत्वपूर्ण मद बना रहा।

पुर्तगाली एशिया के देशों के मध्य होने वाले व्यापार में भी भाग ले रहे थे जो संभवत गोवा और लिस्बन के बीच होने वाले व्यापार से भी ज्यादा लाभप्रद था। हालांकि लाभ अधिकशांत निजी व्यक्ति उठा रहे थे। एशिया के देशों में मध्य पुर्तगाली व्यापार का एक अंश मोलुकका, से लिस्बन की ओर होने वाले निर्यात व्यापार को भी बनाए रखता था क्योंकि ये मसाले भारतीय वस्त्रों के मोलुकका को निर्यात के माध्यम से ही प्राप्त किए गए। शुरू से ही यह व्यापार राजा को एक ''ढीला–ढाला'' एकाधिकार था जिसमें शाही जहाजों के कर्मी दल को भाग लेने का अधिकार प्रदान किया गया था। संसाधनों की कमी के समय में, एशिया के देशों के मध्य व्यापार में निजी व्यापारियों को भी भाग लेने की अनुमति थी। जहां जहाजों के कप्तान शाही जहाजी का इस्तेमाल अपने निजी व्यापार के लिए वस्तुएं ढोने के लिए कर रहे थे, वहां राजा की भागीदारी माल ढोने की सेवा प्रदान करने जैसी थी जो ज्यादा लाभकारी नहीं था। पुर्तगाल राज्य की

वित्तीय स्थिती 1540 और 1550 के दशक में काफी बुरी थी और राजा के लिए एशिया के देशों के मध्य होने वाले व्यापार में अपनी भागीदारी को जारी रखना लाभप्रद नहीं था। राजा के लिए अपने एकाधिकार को बनाए रखना काफी कठिन था क्योंकि शाही घराने के पास इसके बनाए रखने के लिए वित्तीय साधन नहीं थे।

1.2.2 पुर्तगालियों के आगमन का भारत पर प्रभाव :–

'यह तुमाकु की खेती पुर्तगालियो की ही देन है। फूलगोभी, टमाटर, हरी मिर्च, रसभरी, पपीता, आलू, मूंगफली इत्यादि कृषि फसलें भारत में पुर्तगाली ही लाए।

'भारत के पश्चिमी और पूर्वी तट में कैथोलिक धर्म का प्रचार जमकर किया गया और इस प्रकार भारत मे ईसाइयत के आगमन का ये माध्यम बने।

'पहली प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना भारत में इन्होंने ही की।

'पुर्तगालीयो के साथ ही भारत में गोथिक स्थापत्यकला का आगमन हुआ।

'पुर्तगाली शासन भारत में लगभग 450 सालों 1961 तक रहा जिससे भारत पर व्यापार प्रभाव पड़े।

1.2.3 पुर्तगालियों का व्यापारिक नियंत्रणः–

पुर्तगालियों ने मसालों के व्यापार पर एकाधिकार जमाने की कोशिश की थी। पूरी सोलहवीं सदी में गोवा और लिस्बन से जारी आदेशों और निर्देशों की एक कड़ी ने यह स्पष्ट कर दिया कि मसालों के व्यापार पुर्तगाली राजा और उसके नुमाइंदों के लिए आरक्षित था। यह एकाधिकार कठोरता पूर्वक लागू किया गया और पुर्तगाली की नौसैनिक सर्वोच्चता ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए पूरे समुद्री यातायात का नियमन और नियंत्रण आवश्यक था। राजा ने एशिया के अंदर कुछ सुनिश्चित स्थानों पर एकाधिकार के आधार पर कुछ अभियान शुरू किए। केवल नामजद जहाज ही एक विशेष साल में एक निर्धारित यात्रा कर सकते थे।

सोलहवीं सदी के शुरू में शाही जहाजों में माल रखने का स्थान निजी व्यापारियों को काफी ऊंची कीमत पर दिया जाता था। 1540 के दशक के बाद राजा को इस तरह के व्यापारिक जोखिम काफी महंगे लगने लगे क्योंकि समुद्री जहाजों का निर्माण काफी महंगा काम था। पुर्तगाल ने अब निजी व्यापारियों और व्यक्तियों को इस प्रकार के व्यापारिक जोखिम उठाने के लिए लाइसेंस देने शुरू कर दिए।

ये लाइसेंस कई तरह के आधार पर दिए जाते थे जैसे सैन्य सेवा के लिए पारितोषिक, प्रमुख लेकिन गरीब हो रहे फिदलगो की बेटियों के लिए दहेज या किसी पद प्राप्ति के लिए आवश्यक कारक के रूप में। लेकिन, यह लाइसेंस अधिकतर अधिकतम बोली लगाने वाले व्यक्तियों को दिए जाते थे और जो भी

हो, धारक के लिए काफी लाभप्रद हो सकते थे। पुर्तगालियों ने भारतीय महासागर में अन्य व्यापरियों द्वारा किए जा रहे व्यापार पर कर लगाने और इस को नियंत्रण करने की कोशिश भी की। इसका मुख्य साधन कारटाज या पासपोर्ट का इस्तेमाल था इस व्यवस्था को जल सेना (अरमांडा) के द्वारा नियंत्रण किया जाता था।

एशिया में समुद्री व्यापार को नियंत्रण करने के प्रयास के लिए पुर्तगाली और औचित्य देते थे कि वह समुद्र के स्वामी थे। इसीलिए एशिया में व्यापार करने वाले सभी समुद्री जहाजों का सश्रम पुर्तगाली अधिकारी द्वारा जारी किए गए पास या कारटाज की जरूरत पड़ती थी। इस प्रकार पास से जहाज के कप्तान की पहचान होती थी, इसमें जहाज का आकार लिखा होता था और इसके दल के विषय में भी लिखा होता था और इसके दल के विषय में भी लिखा होता था। हथियार और युद्ध सामग्री की मात्रा बहुत सख्ती से समिति रखी जाती थी। अपने लक्ष्य की तरफ जाने से पहले जहाज को पुर्तगाली किले पर हाजिरी देकर सीमा शुल्क अदा करना पड़ता था। बिना पास वाले किसी भी जहाज को जब्त कर लिया जाता था और उसके दल को कठोर सजा दी जाती थी। कारटज जारी करने के लिए बहुत कम फीस ली जाती थी लेकिन पुर्तगालियों को सीमा शुल्क के रूप में काफी फायदा होता था।सोलवीं सदी के बाद में, पुर्तगालियों ने व्यापार नियंत्रण का एक नया साधन खोजा वह था काफिला। यह छोटे व्यापारी जहाजों का एक रक्षा–दल होता था जिसकी सुरक्षा पुर्तगालियों बेड़ा करता था। काफिला सिद्धांत के आधार दो प्रकार के थे पुर्तगाली सीमा शुल्क कार्यालय को आय और स्थानीय व्यापारियों को संरक्षण कुछ काफिले पुर्तगाली किले और बंदरगाह के लिए खाद्य सामग्री भी लाते थे।

1.2.4 पुर्तगाली आधिपत्य का मूल्यांकनः–

पुर्तगाली एकाधिकार का पारंभिक बुरा प्रभाव सोलवीं सदी के पूर्वाध में लाल सागर के माध्यम से भूमध्य सागर के व्यापार पर पड़ा। यह व्यापार सोलवीं सदी के उत्तरार्ध में फिर समुद्र हुआ जब पुर्तगाली नियंत्रण कुछ कम हो गया। 17 शताब्दी में पुर्तगाली एकाधिकार की जगह डच की ज्यादा कुशल एकाधिकार ने ले ली। इसके अतिरिक्त, इस बात पर भी ध्यान देना जरूरी है कि मसालों के व्यापार के द्वारा दिखाए जाने वाले भारी मुनाफो का आकलन किस हद तक सही था।

सोलवीं सदी में उत्तरार्ध में पुर्तगाल की शाही वित्तीय स्थिति खराब हो गई थी किले और बेड़ों के रखरखाव पर काफी पैसा खर्चा होता था। एशिया के व्यापारी एकाधिकार को कायम रखना इसलिए काफी महंगा पड़ता था। दूसरा, पुर्तगाली राज्य विदेशी व्यापारिक पूंजी, विदेशी विशेषज्ञों और बाजारों पर आश्रित था।

पुर्तगालियों को एशिया व्यापारियों और शासकों के विरोध के कारण भी पूर्ण एकाधिकार लागू करने में कठिनाई हुई। इस व्यवस्था में निरंतर 'रिसाव' होते थे। गुजराती व्यापारी 1540 और 1550 के दशकों में भारी मात्रा में काली मिर्च बंगाल की खाड़ी से प्राप्त करके पूरे एशिया में उसका व्यापार करते थे। पुर्तगाली एडेन पर कब्जा करने में भी नाकामयाब रहे जिस पर 1538 में उनके विरोध ऑटोमन साम्राज्य का आधिपत्य हो गया। इससे उनके एकाधिकार की योजना में एक महत्वपूर्ण कमी रह गई। पुर्तगालियों ने फ्रांस की खाड़ी से होने वाले एशियाई व्यापारियों के निजी व्यापार को भी सहन किया क्योंकि वे घोड़ों की आपूर्ति के लिए इन व्यापारियों पर निर्भर रहते थे। वास्तव में गुजरात में घोड़ों के व्यापार पर नियंत्रण पुर्तगालियों की एक मुख्य चिंता थी।

कन्नड़ प्रदेश में और मालाबार में भी जो काली मिर्च के उत्पादन और प्राप्ति के मुख्य क्षेत्र थे पुर्तगाली प्रभावशाली एकाधिकार कायम करने में असफल रहे। मालाबार में कालीकट के जमीरिनो ने पुर्तगाली व्यवस्था का विरोध किया क्योंकि कोचिन का राजा जिस पर पुर्तगाली निर्भर करते थे, पहले कालीकट के अधीन रह चुका था व्यापारिक दृष्टि, इसे इस प्रतिरोध ने स्थानीय व्यापारियों द्वारा काली मिर्च के व्यापार में बने रहने का रूप धारण किया। काली मिर्च वाले भू भागों पर पुर्तगाली नियंत्रण न होने से यह काम और भी आसान हो गया चुकी पुर्तगाली व्यापार जो तटीय क्षेत्रों पर अपने व्यापार में सलगन थे, वे काली मिर्च के उत्पादको को कम दाम देते थे, इसलिए 'गैरकानूनी' स्थानीय व्यापारियों को आसानी से माल मिल जाता था। वे स्थल मार्ग से इसे कोरोमंडल बिना पुर्तगाली हस्तक्षेप के भेज सकते थे या फिर समुद्री मार्ग से गुजरात जो जोखिम – भरा था ।

इसके अतिरिक्ता पुर्तगाली अधिकारियों और व्यापारियों का निजी व्यापर भी इस एकाधिकार व्यापार में 'रिसाव' का एक प्रमुख स्त्रोत बना हुआ था। पुर्तगालियों ने फारस से होने वाले घोड़ों के व्यापार में गोआ को केंद्रबिंदु बनाया तथा इस पर एकाधिकार स्थापित और केंद्रीकृत करने की कोशिश की। दक्षिण अरब या हारमूज से घोड़े लेकर आने वाले सभी जहाजों को गोआ होकर ही आना पड़ता था।इस व्यवस्था में मुख्य कमी यह थी कि स्थानीय शासकों को राजनैतिक कारणों से संतुष्ट करने की जरूरत थी। पुर्तगाली स्थानीय शासकों से रियायतें प्राप्त कर सकते थे अगर वे उनको बिना बाधा के घोड़ों की आपूर्ती की इजाजत दे देते या उनके दुश्मनों को घोड़े नहीं देते।पुर्तगाल में चर्च की भी 'गौर–इसाई या आविश्वासीय' लोगो को घोड़े बेचने काविचार नापसद था।

यदा – कदा पुर्तगालियों और स्थानीय शासकों की सेवा में लगे कुलीन वर्ग तथा व्यापारियों के बीच टकराव होता था। गुजरात में देशज शक्तिशाली समूहों के व्यापारिक हित पुर्तगालियों के साथ टुकराये । भारतीय व्यापारियों के जहाज जहाँ गोवा में सीमाशुल्क अदा करते थे वहीं उन्होंने स्थानीय शासकों के नियंत्रण वाले बंदरगाहों पर भी सीमा शुल्क देना जारी रखा । देशज शासन – व्यवस्थाओं में समुद्री पर

नियंत्रण जरूरी नहीं समझा। क्योंकि उनका ध्यान स्थल भू–भाग की तरफ था जिसके माध्यम से वे किसानो से प्राप्त राजस्व पर ज्यादा महत्वपूर्ण रूप से निर्भर थे । इस प्रकार , स्थानीय चुनौती के अभाव में पुर्तगालियों ने समुद्री व्यापार और जल पर प्रभुसत्ता की धारणा विकसित की और उसको अपनी नौसैनिक सर्वोच्चता के द्वारा कायम किया।

पुर्तगालियों का समुद्री "साम्राज्य'', उनके द्वारा नियंत्रित भू –क्षेत्रफल की दृष्टि से काफी बड़ा था। इस बड़े स्तर की गतिविधि के लिए उपलब्ध वित्तीय और मानवीय संसाधन अपेक्षाकृत कम थे। किसी एक प्रमुख अभियान के लिए यूरोपियन और यूरेशियन लोगों की तादाद शायद ही 5,000 व्यक्तियों तक रही हो। पूरे साम्राज्य में सैन्य सेवा के योग्य व्यक्तियों की संख्या लगभग 10,000 ही रही होगी। अपनी नौसैनिक सर्वोच्चता के बावजूद, इतनी कम मानव–शक्ति के कारण पुर्तगाली व्यापार नियंत्रण के लिए पर्याप्त कदम उठाने में नाकामयाब रहे। पुर्तगालियों ने व्यापारिक मागों, वस्तुओं और व्यापार की तकनीक में या मौजूदा प्रारूप में कोई महत्वपूर्ण बदलाव लाने का प्रयास नहीं किया। यह एक प्रकार का पुनर्वितरणात्मक साम्राज्य था जहाँ पुर्तगालियों ने दूसरों की समुद्री व्यापारिक गतिविधियों से प्राप्त मुनाफे का एक अंश ले लिया।

1.3 डच आधिपत्य की अवस्था (1600–1680):–

डच गणतंत्र की राष्ट्रीय प्रशासनिक संस्था, स्टेटस 'जनरल ने वरनिगड, ओस्ट–इंडिशे कंपनी की नींव रखी। यह कंपनी कई कंपनियों के विलय के परिणामस्वरूप बनी थी। अस्ट्रडम, रोटरडम और जीलैण्ड के समृद्ध व्यापारियों ने इस प्रकार कंपनी के पूंजी संसाधन आधार में वृद्धि की। स्टेट जनरल के चार्टर में कंपनी को 21 वर्षों के लिए पूर्व में व्यापार के लिए एकाधिकार दिए गए थे। इससे लैस होकर डच ईस्ट इंडिया कंपनी ने कोरोमेन्डल तट पर अपना पहला कारखाना स्थापित किया जो दक्षिणा पूर्व के बाजारों जिसमें मोल्लूका, ब्रान्डा और सैलेबी के मसाला द्वीप सम्मिलित थे और यूरोप के बाजारों के लिए वस्त्रों की आपूर्ति का मुख्य बिन्दु था।

सत्रहवीं शताब्दी में दक्षिण – पूर्व के बाजारों में वस्त्रों की माँग बंढ़ जाने से कोरोमण्डल तट पर कंपनी के व्यापार में एक अभूतपूर्व वृद्धि दर्ज हुई। सन् 1680 तक डच और अंग्रेजो कंपनियाँ व्यवहारिक रूप से पूरे व्यापार के लिए उत्तरदायी थी। डच ईस्ट इंडिया कंपनी इस व्यापार में मुख्य थी जबकि अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी ने 1680 से विशेषकर यूरोपियन एशिया व्यापार के क्षेत्र में आगे बढ़ना शुरू किया। लेकिन एशिया देशों के मध्य व्यापार में खासतौर पर कोरोमण्डल तट और दक्षिण – पूर्व के एशियाई बाजारों के मध्य व्यापार पर डच व्यापारियों ने कुल मिलाकर अपनी सर्वोच्चता कायम रखी। जहाँ सोलहवीं सदी में पुर्तगालियों ने स्वयं को भारत के दक्षिण पश्चिमी तट पर सीमित रखा था, डच और अंग्रेजों ने अपने व्यापारिक तंत्र को फैला कर इसमें कोरोमण्डल तट, बंगाल और गुजरात को भी शामिल कर लिया। ये नयी

औपनिवेशिक शक्तियाँ भी मुख्य रूप से तटीय क्षेत्रो तक सीमित रही, लेकिन आंतरिक क्षेत्रों जैसे अहमदाबाद और आगरा में भी व्यापारिक केंद्र स्थापित किये गये।

1.3.1 डच व्यापार की प्रकृति और स्वरूप :–

जहा सत्रहवीं सदी में डच प्रभुत्तव उनके बाजारों में प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता पर आधारित था, उन्होंने फिर भी मसाला द्वीपों में उत्पादकों को कम दर से भुगतान करते हुये एकाधिकार अधिकारों का इस्तेमाल भी किया। उन्होंने देशज व्यापारियों की प्रतिस्पर्धाकम को कम करने के लिए विशिष्टि उत्पादों और बाजारों पर अपने एकमात्र अधिकार प्राप्त के लिए विशिष्ट उत्पादों और बाजारों पर अपने एकमात्र अधिकार प्राप्त करने के लिए बुल और हिंसा इस्तेमाल भी किया।

डच इंडिया कंपनी ने पुर्तगालियों द्वारा विकसित की गयी पास व्यवस्था का उपयोग भी एशियाई प्रतिस्पर्धियों को एकाधिकार वाले उत्पादों के व्यापार से बाहर रखने के लिए किया। सत्रहवीं सदी के दौरान यूरोप–एशियाई व्यापार के महत्व और मात्रा में असाधारण वृद्धि हुई थी। इस व्यापार सरचना में विविधता पाई जाती है। डच कंपनी के एशियाई देशों मध्य व्यापार में भूमिका होने के कारण भारत डच व्यापारियो के लिए एक प्रमुख आपूर्ती करने वाला देश था। कोरोमण्डल तथा गुजरात के वस्त्रों का इंडोनेशिया के द्वीप समुह में काली मिर्च तथा अन्य मसालों से विनिमय किया जाता था। कंपनी बंगाल से कच्चे रेशम और अफीम का निर्यात भी करती थी। यूरोप–भारत के व्यापार की संरचना भी बदल गई थी।भारत से यूरोप को निर्यात किये जाने वाली प्रमुख मदों में काली मिर्च तथा मसालों का महत्व कम हो गया। सत्रहवीं सदी के आरंभ में यूरोप में होने वाले कुल आयात में वस्त्र और कच्चे रेशम का हिस्सा 16% से बढ़कर सदी के अंत तक कुल आयातों का 55% हो गया था।

कोरोमण्डल के अतिरिक्त बंगाल, जो कच्चे रेशम और वस्त्रों का उत्पाद था, वह भी ड्च के लिए प्राप्ति का एक मुख्य केंद्र बन गया। 'भारत के साथ डच व्यापार की एक अन्य प्रमुख विशेषता डच द्वारा भारतीय वस्तुओं को खरीदने के लिए भुगतान के रूप में बहुमूल्य धातुओं की जरूरत थी। यूरोप पश्चिमी उत्पादों को एशिया में उस मूल्य पर आपूर्ति कर पाने में असमर्थ था जो उत्पादों के लिए मांग उत्पन्न कर पाए।

यूरोप एशिया व्यापार के 'वस्तुओ के लिए सोना – चाँदी' इस प्रतिमान का एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी था कि यूरोप के व्यापारियों के लिए इस व्यापार में मुनाफे पूरी तरह यूरोप की वस्तुओं की एशिया में बिकी के बजाय एशिया वस्तुओं की यूरोप में बिक्री से प्राप्त किए जा रहे थे बहुमूल्य धातु या सोने चांदी के अलावा डच भारत को लिडेन में बनी उन, रेशमी तथा अन्य वस्त्र और गैर बहुमूल्य धातुएँ जैसे सीसा, लोहा और पारा और साथ ही शराब भी निर्यात करते थे सन् 1663 में कोचीन का राजा डच ईस्ट इंडिया कंपनी की मदद से पुर्तगालियों को अपने राज्य से खदेड़ने में कामयाब रहा और इच को पुर्तगालियों जैसे ही

एकाधिकार और विशेषाधिकार प्राप्त हुए। इससे पहले डच कंपनी ने दबाव देकर इंडोनेशिया के मसाला द्वीपों के अधिकारी वर्ग के मसालों जैसे लौंग, जायफल और जावित्री आदि की प्राप्ति लिए एकाधिकार प्राप्त किये थे।

भारतीय उप–महाद्वीप में भी, डच कंपनी और स्थानीय अधिकारियों ने अपने बीच संबंधों को दोनों के लिए पारस्परिक रूप से लाभकारी पाया था। देशज अधिकारी–गणों ने कंपनी के व्यापार को अपनी आय और आर्थिक संसाधनों में एक शुद्ध वृद्धि के रूप में पाया। तत्काल लाभ सीमा शुल्क के राजस्व से था जो मुगल राजस्व के लिए भू राजस्व के बाद प्रमुख था।

इसके अतिरिक्त कंपनी भारत से वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए सोना चाँदी' या बहुमूल्य धातुएँ लाती थी। इन बहुमूल्य धातुओं का अंतप्रवाह भारतीय मुद्रा प्रणाली के लिए आवश्यक था क्योंकि इन धातुओं का स्थानीय घरेलू उत्पादन नगण्य था सामन्यतः मुगल साम्राज्य के अधिकारियों तथा अन्य क्षेत्रीय शासकों द्वारा लगाई गई सीमा शुल्क की दरें वही थीं जो वे भारतीय व्यापारियों से प्राप्त करते थे लेकिन, मुगल प्रशासन ने डच और अंग्रेजी कंपनियों को भारतीय पारगमन कर (रहदारी) के भुगतान से मुक्त रखा जिससे उन्हे भारतीय व्यापारियों की तुलना में थोड़ा सा फायदा था। स्थानीय और प्रांतीय अधिकारियों ने पारगमन कर बसूलना जारी रखा। दूसरे शब्दों में , डच और अंग्रेजी कंपनियाँ भारत में भारतीय व्यापारियों के अन्य समूहों की तरह की सक्रिय थी और उनकी गतिविधियों को किसी प्रकार के विशेष अधिकार्य प्रतिबंधों का सम्मान नहीं करना पड़ता था।

1.3.2 डच कारखानों की प्रशासनिक कार्य – प्रणाली

1606 में उत्तरी कोरोमण्डल तट पर डच ईस्ट कंपनी ने अपना कारखाना पेटापुली में स्थापित किया। उसी वर्ष एक अन्य कारखाना मसुलीपट्टनम के बंदरगाह पर स्थापित किया। सन् 1610 में पुलीकर में एक कारखाना स्थापित किया गया, जो कोरोमण्डल पर डच निदेशालय का मुख्य कार्यालय भी बन गया। 1613 में पुलीकट में गेल्डिरिया का किला निर्मित किया गया। कोरोमण्डल के कारखानों का पूरा नियंत्रण गर्वनर के राज्यपाल के हाथ में था। मुस्लीपट्टनम कारखाने का प्रमुख प्रभुत्व की श्रेणी में के दूसरे स्थान पर था और 1621 में उसे प्रेजीडेन्ट या अध्यक्ष के नाम से नामजद किया। सन् 1690 में कोरोमण्डल 'सरकार' का मुख्य केंद्र पुलीकट से बदलकर दक्षिणी कोरोमण्डल तट पर नागपटिनम बना दिया गया। 1680 में कोरोमण्डल तट ही इन व्यापारिक संस्थाओं को केवल 441 व्यक्ति संचालित कर रहे थे जिनमें से 233 विभिन्न प्रकार के काम करने वाले भारतीय थे। 208 यूरोपीय अधिकारियों में से केवल 128 सिपाही थे जिनमें एकलेफ्टिनेंट, 5 सारजेंट और 7 कॉरपोरल शामिल थे। ये अधिकांश गोल्डिरिया के किले पर तैनात थे। बाकी नागरिक प्रशासन में कंपनी की व्यापारिक गतिविधियों का ध्यान रखते थे और इसके अंतर्गत प्रमुख कारिन्दे निम्न कारिन्दे और लिपिक सहायक आते थे परकोटे से घिरा फैक्ट्री का अहाता निवास स्थल

के रूप में और मूल्यवान वस्तुओं के मालगोदाम के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। यह ढाँचा गुजरात, मालाबार और बंगाल में भी पाया जाता था।

बंगाल और गुजरात में कारखानों की एक मुख्य विशेषता कारिन्दों के रूप में सैन्य अधिकारियों का अभाव था। बंगाल और गुजरात में डच और यूरोपीय अधिकारियों को इस तरह, अधिकांशतः व्यापारिक जिम्मेदारियाँ ही दी जाती थी। यहाँ तक कि दुगली में (वित्तीय) कानून लागू करने वाले अधिकारी का मुख्य काम कंपनी के कारिंदों द्वारा निजी व्यापार में गैर कानूनी भागीदारी को रोकना था। सन् 1665 में बंगाल के कारखानों को पुलीकट सरकार के नियंत्रण से स्वतंत्र एक निदेशालय के रूप में संगठित किया गया हुगली की प्रमुख फैक्ट्री बंगाल की फैक्ट्रियों के डच निदेशालय का केंद्र बन गई इस प्रमुख कारखाने की प्रमुख कार्यकारी संस्था गवर्नर या राज्यपाल निदेशक के नेतृत्व में एक काउंसिल या सभा थी। हुगली की काउंसिल या सभा में निर्देशक के अलावा कंपनी का लेखा जोखा या हिसाब रखने वाला एक वरिष्ठ कारिन्दा, कानून लागू करने वाला अधिकारी, फैक्ट्री के गोदाम पर नियंत्रण रखने वाला कारिन्दा तथा कुछ अन्य कारिन्दे होते थे।

प्रत्येक अधीन फैक्ट्री भी प्रमुख फैक्ट्री के नियंत्रण वाली काउंसिल द्वारा संचालित होती है। प्रमुख प्रशासक का कार्यालय, जो कोरोमण्डल तट के सभी कारखानों के हिसाब को बेटविया भेजे जाने से पहले देखता था कोरोमण्डल के कारखानों की देख–रेख करता था। तट के कारखानों के डच कर्मचारियों को न्याय और दण्ड देने की शक्तियों से लैस एक न्याय की काउंसिल भी थीं। जावा में बेटविया में स्थित गर्वनर जनरल की सभा अपनी एक बड़ी संस्था के साथ पूरे व्यापारिक साम्राज्य को संचालित करती थी। यह कम्पनी के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स जिसे हैरान XVII के नाम से जाना जाता था तथा एशिया में कंपनी के हितों के बीच एक मध्यस्थता करने वाली प्रशासनिक संस्था थी।

प्रारंभ में यह प्रशासनिक संस्था बैन्टम में स्थित थी लेकिन 1619 में इसका स्थान बदलकर बेटविया कर दिया। यह कंपनी में का पूर्व में प्रमुख कार्यालय बन गया और प्रमुख कारखाने और बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स के बीच प्रमुख कड़ी के रूप काम करता था। यहाँ तक कि हालेण्ड भेजे जाने से पहले पूर्वी एशिया का माल पहले बेटविया में इकट्ठा किया जाता था। एशिया के देशों के मध्य व्यापार में डच कंपनी की व्यापक भागीदारी को, जो इसको अंग्रेजी और फ्रांसीसी कंपनियों से अलग करती थी, बेटविया से होने वाले समन्वयन ने आगे बढ़ाया।

डच ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपनी नौसैनिक सर्वोच्चता का इस्तेमाल करते हुए पुर्तगालियों द्वारा भारतीय व्यापार नियंत्रित करने के लिए विकसित किए गए संस्थागत साधनों पास तथा रक्षा दल को भी अपनाया। भारतीय जलयान जो तख्तों को अपने स्थान पर बनाए रखने के लिए अक्सर रस्सी और खेल पर निर्भर करते थे भारी तोपों की बम वर्षा या भारी तोपों के प्रतिशत को बर्दाश्त करने की शक्ति नहीं रखते थे।

अपनी बेहतर नौसैनिक शक्ति के बावजूद डच पास व्यवस्था को प्रभावशाली तरीके से लागू करने में नाकामयाब रहे उदाहरण के लिए 1641 में मलक्का की विजय के बाद डच कंपनी ने भारतीय जवानों को मलक्का के उत्तरी बंदरग्राह में सीधे प्रवेश पाने की सुविधा पर अंकुश लगाने और मलाय महाद्वीप के मुख्य टिन–उत्पादन क्षेत्र पर एकाधिकार के समझौते लागू करने की कोशिश की इसके अतिरिक्त डच कंपनी को गुजरात में बदले की भावना से प्रेरित परिणाम भी भुगतने पड़ते थे।

1.3.3 डच ''सम्राज्य'' का भारतीय समाज और राज्य पर प्रभावः–

भारत के पूर्वी और पश्चिमी दोनों तटों पर कई बंदरग्राह शहरों का विकास यूरोप की व्यापारिक कंपनियों के व्यापारिक गतिविधियों का नतीजा था। इससे पहले के समय में बंदरग्राह व्यापारियों की समुद्र पार व्यापारिक गतिविधियों और भीतरी प्रवेश के बीच की कड़ी थी यूरोपीय कंपनियों के प्रशासन के अंतर्गत बंदरगाह सत्ता और शक्ति के केंद्र बिंदु बन गए। चूकि ये एक विदेशी और संभवत विरोधी वातावरण में काम कर रहे थे इसलिए उनकी तत्काल किलेबंदी कर दी गई ताकि उनकी सुरक्षा हो सके पुलीकट के डच लोगों ने भारत में एक क्षेत्रीय साम्राज्य स्थापित करने की कोशिश की लेकिन फिर भी जावा और मसाला विवो में एक शक्तिशाली क्षेत्रीय आधार स्थापित करके उन्होंने इस दिशा में फ्रांसीसी और अंग्रेज कंपनियों के लिए पहले ही रास्ता तैयार कर दिया था बंदरगाह शहरों में रहने वाले छोटे यूरोपीय समुदाय का भारत के समाज और राज्य की सरंचना पर कोई ज्यादा महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं हो सकता था।

कंपनियों ने निर्यात योग्य वस्तुएं प्राप्त करने के लिए भारत में उपलब्ध उत्पादन और प्राप्ति के मौजूदा तंत्र का उपयोग किया हालांकि समय के साथ, कुछ विशिष्ट समस्याओं को समझाने के लिए कुछ बदलाव भी शुरू किये। यूरोपियन व्यापारियों ने भारतीय व्यापारियों के साथ लेन–देन करने के लिए दलालों की सेवाओं उपयोग किया जो स्थानीय बाजारों की गहरी जानकारी रखने वाले भारतीय कर्मचारी थे। कुछ अवसरों पर भारतीय शासकों और डॅच के बीच अधीनस्थ करने की स्थिति में नहीं थे। भारतीय शासकों ने डच व्यापार को अपने लिए लाभकारी पाया। कंपनियों द्वारा भारत में आयात किए गए सोने और चांदी में बहुमूल्य धातुओं की आपूर्ति काफी मात्रा में की तथा बढ़ाई। डच ईस्ट इंडिया कंपनी को गोल्डिरिया किले में पुलिक एक टकसाल चलाने की अनुमति मिली और बाद में 1658 में इसे नागपट्टिनम में पेगोड़ा या सोने के सिक्के बनाने का विशेष अधिकार प्राप्त हुआ।

1.4 सारांश

यूरोपीय देशों से भारत के व्यापारिक सम्बंध प्राचनी काल से ही जल तथा थल मार्ग द्वारा था। किन्तु पन्द्रहवी सदीमें राजनैतिक उथल–पुथल के कारण यह व्यापारिक सम्बंध बाधित हो गया। यूरोपीय देशों में भारतीय मसालों एवं वस्तुओं की व्यापक मांग थी। इसकी पूर्ति के लिए नित नये रास्तें खोजने के प्रयत्न हो रहे थे। इसमें वास्को–डी–गामा को सफलता मिली। इसके पश्चात् डच, अंग्रेज और फ्रांसीसी भी

व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा में शामिल हो गये। दीर्घकालीन संघर्ष के पश्चात् अंग्रेजों ने भारत को अपना उपनिवेश बना लिया।

1.5 शब्दावली –

धर्मान्तरण

बंदरगाह

एकाधिकार

आयात

1.6 स्वमूल्यांकन प्रश्न – निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (×) का चिन्ह लगाइए।

i. वास्को–डी–गामा मई 1498 में कालीकट पहुँचा।

ii. तम्बाकू की खेती पुर्तगालियों की देन नहीं है।

iii. डच ईस्ट इंडिया कम्पनी ने कोरोमण्डल तट पर अपना पहला कारखाना स्थापित किया।

iv. पुर्तगालियों ने घोड़ों के व्यापार में गोवा को केन्द्र बिन्दु नहीं बनाया।

उत्तर(i) (✓) (ii) (×) (iii) (✓) (iv) (×)

1.7 सन्दर्भ उपयोगी पुस्तकें–

1. आर.एस. व्हाइटवे – द राईजद्य ऑफ द पुर्तगीज पॉवर इन इंडिया–1497–1550.

2. शफात अहमद खान – द इस्ट इंडिया ट्रेड इन द ट्वेल्वथ सेन्च्युरी, इट्स पॉलीटिकल एण्ड इकोनोमिक एसपेक्ट्स।

3. एस. चौधरी – ट्रेड एण्ड कमर्शियल ऑर्गेनाइज़ेशन इन बंगाल – 1650–1720.

1.8 अभ्यास कार्य प्रश्न

i. पुर्तगालियों के भारत में आगमन का वर्णन कीजिए।

ii. पुर्तगाली साम्राज्य कहाँ तक फैला हुआ था?

iii. डच आधिपत्य की व्यवस्था का वर्णन कीजिए।

iv. डच साम्राज्य का भारतीय समाज ओर राज्य पर प्रभाव का वर्णन कीजिए।

इकाई–2 मराठो का आर्थिक क्रियाकलाप

2.0 प्रस्तावन

2.1 उद्देश्य

2.2 आय के मुख्य स्रोत

2.2.1 चौथ

2.2.2 सरदेश मुखी

2.2.3 मिरासपेट्री या सिंहानपट्टी

2.2.4 काठी

2.2.5 अगाऊ

2.2.6 राजस्व संग्रह

2.2.7 व्यापार

2.2.8 कृषि

2.3 सारांश

2.4 शब्दावली

2.5 स्वमूल्यांकन र्प्शन

2.6 संदर्भ उपयोगी पुस्तके

2.7 अभ्यास कार्य प्रश्न

2.0 प्रस्तावनाः–

मराठा साम्राजय की स्थापना छत्रपति शिवाजी ने 1674 ई० में की थी। इनका जन्म 1627 ई० में पुणे के जुनार नगर के पास शिवनेरी के किले में हुआ था। शिवाजी की इच्छा एक स्वतंत्र राज्य स्थापित करने की थी। जो की 1679 ई० में (यानि कि 47 साल की) उम्र में पूरी हुई। छत्रपति शिवाजी के वंशो ने मराठा साम्राज्य में 75 वर्षो तक अपना अधिकार बनाये रखा। जिसमे शिवाजी, शम्भा जी, राजा राम, शिवाजी द्वितीय और ताराबाई तथा शाहू इत्यादि महान राजा शामिल थे। ये इस साम्राज्य को बड़ी उचाइयो पर ले गए थे। इस समय भारत के इतिहास में हिन्दू साम्राज्य के पुनः जागरण माना जाता हैं क्योकि इससे पहले लगभग पुरे देश में मुस्लिम शासको ने अपना अधिकार जमा के रखा था। शिवाजी ने दरबार में मराठी के भाषा के रूप में प्रयोग किया था। शिवाजी के मंत्रिमंडल को अष्ठ प्रधान कहा जाता था। शिवाजी का उत्तराधिकार शम्भा जी थे। शम्भा जी ने उज्जैन के हिंदी एव संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान कवि कलश को अपना सलाहकार नियुक्त किया था। मार्च 1689 ईश्वी को मुगल सेनापति मखर ने सघमेश्वर में छिपे हुए शम्भा जी एव कवि कलश को गिरफ्तार कर लिया और उसकी हत्या कर दी।

2.1 उद्देश्य – इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे की –

- मराठा काल में आय के स्रोत क्या थे।
- इस काल के व्यापार के बारे में जानकारी प्राप्त होगी।
- कृषि के बारे में जानेगे।
- मराठा की आर्थव्यवस्थ कैसी थी।

2.2 शिवाजी की कर व्यवस्थाः–

शिवाजी की कर व्यवस्था मालिक अंबर की कर व्यवस्था पर आधारित थी। शिवाजी ने रस्सी द्वारा माप की व्यवस्था के स्थान पर काठी एव मानक घड़ी को प्रयोग किया। शिवाजी के समय कुल उपज का 33%भाग राजस्व के रूप में वसूला जाता था। जो बढ़कर 40%हो गया। हालांकि कर में वृद्धि करते समय उसने चालीस प्रकार के स्थानीय करो को भी माफ कर दिया था। शिवाजी के राजस्व प्रशासन के सर्वाधिक आलोचना फरायर ने की हैं। फरायर के अनुसार राज्य के कर्मचारी कृषको से रुपए ऐंठते थे और उन पर जुल्म करते थे। हालांकि उसका यहाँ मत बिलकुल भी सही नहीं हैं क्योकि शिवाजी भूमि के पुस्तैनी अधिकारी मीरा सदारो पर बहुत कड़ी निगरानी रखते थे। शिवाजी को भू – राजस्व से ज्यादा आय नहीं होती थी उसकी आय का मुख्य स्रोत चौथ एव सरदेश मुखी था।

2.2.1 चौथ :–

इसे खानदानी भी कहा जाता था। जो भी राज्य अपनी आय का 1/4 देता था उसे मराठा लूटमार से मुक्ति मिलती थी। इतिहासकार रानाडे ने चौथ की तुलना वैलजलि के सहायक संधि से की हैं। जिन क्षेत्रों से चौथ वसूली जाती थी। वे मुगलई कहलाते थे। चौथ कोई नयी चीज नहीं थी क्योकि गुजरात के जमींदार ऐसे ही राजस्व के 1/4के रूप में बंठ को वसूली करते थे। बाद में सिक्खो ने राखी प्रणाली (रक्षित गांव) के तहत इसे अपनाया था।

2.2.2 सरदेशमुखी :–

यह किसी प्रांत की समान आबादी पर एक प्रतीक के रूप में लगाई जाती थी। शिवाजी ही उनका सरदेशमुख अधिराज हैं। यह 10%होता था।

2.2.3 मीरासपट्टी या सिहासनपट्टी :–

जब शिवाजी सिहासन पर बैठे तो सभी देशमुखों (जमींदारों) पर सिहासन पट्टी नामक कर लगाया। चौथ एक सरदेशमुखी वसूलने पर इतिहासकार स्मिथ ने शिवाजी के राज्य को डाकू राज्य कहा। वही इतिहासकारो का एक वर्ग इसे सैनिक राज्य या युद्ध राज्य मानता हैं हालांकि सेना अपने खर्च हेतु काफी हद तक लूट पर निर्भर थी फिर भी यह न तो डाकू राज्य था और न ही सैनिक राज्य। शिवाजी की भू –

राजस्व व्यवस्था रैयतवाड़ी थी। यह व्यवस्था मलिक अंबर की राजस्व व्यवस्था से प्रभावित थी। शिवाजी ने मराठी टोडरमल के नाम से विरत्यात अंनाजी दतो के माध्यम से भूमि का सरवक्षेण करवाया था।

2.2.4 काठी :–

भूमि की पैमाइश हेतु रस्सी के स्थान पर काठी (मानक घड़ी) का प्रयोग हुआ।20 काठी = 1 बीघा तथा 120 बीघा = एक चावर निश्चित हुआ।

2.2.5 अगाऊ :–

राज्य कृषको को बीज एव मवेशी खरीदने हेतु अगाऊ ऋण देता था। मुद्रा व्यापारिक कर और भूमि से लगान मराठो की आय के स्थायी साधन थे। इस कारण मराठो ने अपनी आय का मुख्य साधन चौथ और सरदेशमुखी को बनाया था। मराठो की आर्थिक स्थिति काफी अच्छी थी क्योकि ये काफी शक्तिशाली थे इसलिए जो चाहे कर सकते थे और उनका प्रशासन स्थिर था। अधिकांश लोगो ने मराठो का शासक के रूप में स्वीकार किया था और उन्हें किसी भी समस्या का सामना नहीं करना पड़ा। मराठा राज्य एक मजबूत और सुव्यवस्थित सरकार थी। इसलिए मराठो ने अपने प्रशासन को आदेश दिया था की हर आम आदमी प्रशासन के कामो से संतुष्ट होना चाहिए उन्हें किसी भी प्रकार की परेशानी नहीं होनी चहिये।

2.2.6 राजस्व संग्रह :–

राजस्व सग्रह मराठा शासन का एक महतवपूर्ण हिस्सा था। उनके पास 'चौथाई' नामक एक अनूठी कराधान प्रणाली थी जिसके तहत भूमि, जोतने वाले बैल और खेती में लगी पूंजी पर सालाना कर लगाया जाता था। चौथाई जमीन और जुताई वाले बैलो पर और कभी – कभी पूंजी पर लगाया जाता था। यह कोई कर नहीं था जिससे किसी को आयकर देना पड़े। इस प्रणाली का आकलन पंचायत और जिला परिषद पर किया गया था।

2.2.7 व्यापार :–

मराठा महान व्यापारी थे। वे कपास, चमड़े के सामान और मसालों का व्यापार करते थे। मराठो ने भारत के पश्चिमी तट पर सूरत के बंदरगाह में व्यापार करना शुरू किया। उनका मुख्य घरेलू व्यापार सूती और रेशमी कपड़ा था।

2.2.8 कृषि :–

अर्थव्यवस्था में कृषि का मुख्य योगदान मराठा साम्राज्य में रहा। इन्होने कृषि को कई वर्गो या श्रेणियों में विभाजित किया। खेती के लिए उपलब्ध भूमि किसी भी देश के आर्थिक विकास में एक प्रमुख भूमिका निभाती हैं मराठा साम्राज्य भारत में सबसे उपजाऊ क्षेत्रों में से एक था। अच्छी मात्रा में भूमि की उपलब्धता के कारण मराठा क्षेत्र को मुख्य भोजन का कटोरा माना जाता था। मराठो ने किसानो को राहत पहुंचने के लिए अनेक कार्य किए। लगान की वसूली के लिए किसानो से सीधा सम्पर्क स्थापित करने का

प्रयास किया। मराठो ने जागीरदारी और जमींदारों प्रथा को समाप्त नहीं किया और न ही जागीरे देना पूरी तरह से बंद किया। परन्तु उन्होंने जमीन पर वंशनुगत अधिकार रखने वालो पर पूरी तरह से नियंत्रण स्थापित किया और उनके प्रभाव को कमजोर कर दिया। लगान वसूलो के लिए राजकीय अधिकार नियुक्त कर दिए गए और लगान की राशि भी निश्चित कर दी गई। कृषि को प्रोत्साहन देने के लिए किसानो को आवश्यकतानुसार ऋण एव अन्य आवश्यक सामग्री दी गई। इस सब के चलते राज्य की आर्थिक स्थिति सुढृढ़ हुई। राजकीय आय का एक बड़ा भाग प्रशासन, सेना एव जनहित के कार्यों पर खर्च होता था। जब एक बार किसी इलाके पर मराठो का विजय अभियान पूरा हो जाता था। और मराठो का शासन सुरक्षित हो जाता था तो वहां स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए मराठे धीरे धीरे भू–राजस्व की मांग करने लग जाते थे। मराठा साम्राज्य में कृषि को प्रोत्साहित किया गया और व्यापार को पूर्ण जीवित किया गया ताकि मराठा सरदारों को शक्तिशाली सेनाएँ खड़ी करने के लिए संसाधन मिल सके। मराठो द्वारा नियंत्रित इलाको में व्यापार के नए मार्ग खुले। चंदेरी क्षेत्र में उत्पादित रेशमी वस्त्रो को मराठो की राजधानी पुणे में नया बजार मिला। मराठो की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी क्योकि प्राकृतिक साधनो ने उन्हें घेर लिया था। अधिकांश लोग गावो में रहते थे और खेती करते थे वे फसल उगाते थे, गायों और भेड़ो को पालते थे, जानवरो का शिकार करते थे और उन को कपड़ो में बुनते थे। महाराष्ट्र को भारत के सबसे उपजाऊ क्षेत्रों में से एक माना जाता था।

2.3 सारांशः–

मराठा साम्राज्य का उदय केवल एक अस्थायी साम्राज्य नहीं था बल्कि लोगो की इच्छा के लिए एक सामूहिक आवाज थी। उन्हें लोगो का भारी जन समर्थन मिला क्योकि इन्होने लोगो की सेवा और उनके कल्याण के लिए काम किया। मराठो के समय में व्यापार और कृषि को बहुत बढ़ावा मिला। मराठो ने व्यापार को बढ़ाने के लिए अनेको नई बन्दरग्राहोंऔर नए व्यापारिक मार्गो की खोज की। व्यापार को बढ़ावा देने के लिए आयात और निर्यात का बढ़ावा दिया। कृषि के क्षेत्रों में भी मराठो का विशेष योगदान रहा। कृषि को बढ़ावा देने के लिए मराठो ने अनेक प्रकार के अनुयुक्त करो को हटा दिया।

2.4 शब्दावली

काठी – मानक छड़ी

राखी प्रणाली – रक्षित गांव

श्रेणियाँ – वर्ग

निर्यात – देश से माल बहार भेजना

2.5 स्वमूल्यांकन प्रशन – निम्नलिखित कथनो पर सही या गलत का चिन्ह लगाइए

1) शिवाजी ने भूमि का सर्वेक्षण अन्नाजी दत्तो के माध्यम से करवाया।

2) राज्य कृषको को भूमि खरीदने हेतु अगाऊ ऋण देता था।

3) मराठो के पास चौथाई नामक एक अनूठी कराधान प्रणाली थी।

4) जब शिवाजी सिंघासन पर बैठे तो सभी देशमुखों (जमींदारों) ने चौथ नामक कर लगाया।

उतर– (1) सही (2) गलत (3) सही (4) गलत

2.6 सन्दर्य उपयोगी पुस्तके

1. द ग्रेट मराठा – रंजीत देसाई

2. छत्रपति शिवाजी – काशीनाथ जोशी

3. सुंदरनाथ सेन – एडमिनिस्ट्रेशन सिस्टम ऑफ द मराठास।

4. भारत का आर्थिक इतिहास – डा अशोक कुमार चटर्जी

2.7 अभ्यास कार्य प्रश्न

1) मराठा की आय के प्रमुख स्रोतों का वर्णन करो।

2) मराठो के व्यापार का वर्णन करो।

3) मराठे राजस्व संग्रह कैसे करते थे।

4) मराठो की कृषि व्यवस्था का वर्णन करो।

इकाईतृतीय –ग्रामीण जीवन एवं नगरों का उत्थान

इकाई की रूपरेखा

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 औपनिवेशिक शहर की वाणिज्यिक संस्कृति

3.2.1 औपनिवेशिक शहर का स्वरूप

3.2.2 पहला हिल स्टेशन

3.2.3 बंबई

3.2.4 कलकत्ता

3.2.5 मद्रास

3.3 औपनिवेशिक ग्रामीण समुदाय

3.3.1 सामाजिक संगठन

3.3.2 जाति और गांव

3.3.3 संयुक्त परिवार

3.3.4 जजमानी प्रणाली

3.3.5 गांव की अर्थव्यवस्था

3.3.6 कृषि की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

3.3.7 गांव और वैश्वीकरण बाजार

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 स्वमूल्यांकन प्रश्न

3.7 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तकें

3.8 अभ्यास कार्य प्रश्न

3.0 प्रस्तावना :–

नगरों के विकास में भौगोलिक स्थिति का महत्वपूर्ण स्थान रहा। मैदानी इलाको में यातायात की सुविधाओं की अधिक संभावनाए थी। भारत में 19वी और 20वी शताब्दियों में नगरों का जोरो पर विकास हुआ। औद्योगीकरण जनसख्या में वृद्धि, आधुनिक यातायात एव संचार के साधनो के विकास, आधुनिक शिक्षा

की अहम भूमिका निभाई। इस काल में सूरत, अहमदाबाद, बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, जमशेदपुर, दिल्ली, आदि नगरों का बहुत जोरो से विकास हुआ।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि –

- ओपनिवेशिक काल में कौन–कौन से नगरों का विकास हुआ।
- ओपनिवेशिक शहरी विकास में छावनियों की क्या भूमिका थी।
- ओपनिवेशिक ग्रामीण समुदाय कैसा था।
- संयुक्त परिवार व जजमानी प्रणाली की गांव में क्या भूमिका थी।

3.2 औपनिवेशिक शहरों की वाणिज्यिक स्थितिः–

औपनिवेशिकशहर नए शासको की वाणिजियक संस्कृत को प्रतिबिम्बित करते थे। राजनितिक सत्ता और सरंक्षण भारतीय शासको के स्थान पर ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारी के हाथ में जाने लगी। दुभाषिए, बिचौलिय, व्यापारी और माल आपूर्तिकर्ता के रूप में काम करने वाले भारतीयों का भी इस नए शहरो में एक महत्वपूर्ण स्थान था। नदी या समुद्र के किनारे आर्थिक गतिविधियों से गोदियो और घाटियों का विकास हुआ। समुद्र किनारे गोदाम, वाणिज्यिक कार्यालय, जहाजरानी उघोग के लिए बीमा एजंसिया, यातायात डिपो और बैंकिंग संस्थाओ की स्थापना होने लगी। कंपनी के मुख्य प्रशासकीय कार्यालय समुद्र तट से दूर बनाये गए। प्रशासकीय कार्यालय समुद्र तट से दूर बनाए गए। कलकत्ता में स्थित राइटर्स बिल्ड़िंग इसी तरह का एक दफ्तर हुआ करती थी। यहाँ "राइटर्स" का आशय क्लर्को से था। यह बिर्टिश शासन में नौकरशाही के बढ़ते कद का संकेत था। किले की चारदीवारी के आस – पास यरोपियो व्यापारियों और एजेटो ने यरोपिया शौली के महलनुमा मकान बना लिए थे। कुछ ने शहर की सीमा से सटे उपशहरी (suburb, मुफस्फिल) इलाको में बगीचा घर (garden house) बना लिए थे । शासक वर्ग के लिए नस्ली विभेद पर आधारित क्लब, रेसकोर्स और रंगमंच भी बनाए गए।

अमीर भारतीय एजेंटो और बिचौलियों ने बाजारों के आस पास ब्लॉक टाउन में परंपरागत ढंग के दलानी मकान बनाए। उन्होंने भविष्य में पैसा लगाने के लिए शहर के भीतर बड़ी बड़ी जमीन भी खरीद ली थी। अपने अंग्रेज स्वामियों को प्रभावित करने के लिए वे त्योहारों के समय रंगीन दावतों का आयोजन करते थे । समाज में अपनी हैसियत साबित करने के लिए उन्होंने मंदिर भी बनवाई। मजदूर वर्ग के लिए अपने यूरोपीय और भारतीय स्वामियों के लिए खानसामा, पालकीवाहक, गाड़ीवान, चौकीदार, पोर्टर और निर्माण में गोदी मजदूर के रुप में विभिन्न सेवाएं उपलब्ध कराते थे। वे शहर के विभिन्न इलाकों में कच्ची झोपड़ियों में रहते थे।

19वीं सदी के मध्य में औपनिवेशिक शहर का स्वरूप और भी बदल गया। 1857 के विद्रोह के बाद भारत में अंग्रेजों का रवैया विद्रोह के लगातार आशंका से तय होने लगा था। उनको लगा था कि शहरों की ओर अच्छी तरह हिफाजत करना जरूरी हैं और अंग्रेजों को "देशियो" (Natives) के खतरे से दूर, ज्यादा सुरक्षित व पृथक बस्तियों में रहना चाहिए। पुराने कस्बों के ईद–गिर्द चरागाहो और खेतों को साफ कर दिया गया। "सिविल लाइंस" के नाम से नए शाहरी इलाके विकसित किए गए। सिविल लाइंस में केवल गोरों को बसाया गया। छावनियों को भी सुरक्षित स्थानों के रूप में विकसित किया गया। छावनियों में यूरोपीय कमान के अंतर्गत भारतीय सैनिक तैनात किए जाते थे। ये इलाके मुख्य शहर से अलग लेकिन जुड़े हुए होते थे।चौड़ी सड़कों, बड़े बगीचों में बने बंगलो, बैरकों, परेड मैदान और चर्च आदि से लैस ये छावनियां यूरोपीय लोगों के लिए एक सुरक्षित आश्रय स्थल तो थी ही, भारतीय कस्बों के घनी और बेतरतीब बसावट के विपरीत व्यवस्थित शहरी जीवन का एक नमूना भी थी। अंग्रेजों की नजर में काले इलाके न केवल अराजकता और हो–हल्ले का केंद्र थे। वे गंदगी और बीमारी का भी स्त्रोत थे। काफी समय तक अंग्रेजों की दिलचस्पी गोरों की आबादी में सफाई और स्वच्छता बनाए रखने तक ही सीमित थी। लेकिन जब हैजा और प्लेग जैसी बीमारियां फैली हजारों लोग मारे गए तो औपनिवेशिक अफसरों को स्वच्छता व सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए ज्यादा कड़े कदम उठाने की जरूरत महसूस हुई। उनको डर था कि कहीं ये बीमारियां ब्लैक टाउन से व्हाइट टाउन में ना फैल जाए

3.2.2 पहला हिल स्टेशनः–

छावनियों की तरह हिल स्टेशन भी औपनिवेशिक शहरी विकास का एक खास पहलू था। हिल स्टेशनों की स्थापना और बसावट का संबंध सबसे पहले ब्रिटिश सेना की जरूरतों से था। शिमला की स्थापना गुरखा युद्ध (1815–16) के दौरान की गई। अंग्रेज मराठा (1818) युद्ध के कारण अंग्रेजों की दिलचस्पी माउंटआबू में बनी। जबकि दार्जिलिंग को 1835 में सिक्किम के राजाओं से छिना गया था। ये हिल स्टेशन फौजियों को ठहराने, सरहद की चौकसी करने और दुश्मन के खिलाफ हमला बोलने के महत्वपूर्ण स्थान थे।

3.2.3 बम्बईः–

शुरुआत में मुंबई सात टापुओं का इलाका था जैसे–जैसे आबादी बढ़ी इन टापुओं को एक दूसरे से जोड़ दिया गया ताकि ज्यादा जगह पैदा की जा सके। इस तरह आखिरकार ये टापू एक दूसरे से जुड़ गए और एक विशाल शहर अस्तित्व में आया। बम्बई औपनिवेशिक भारत की वाणिज्यिक राजधानी थी। पश्चिमी तट पर एक प्रमुख बंदरग्राह होने के नाते मह अंतराष्ट्रीय व्यापार का केंद्र था। 19वीं सदी के अंत तक भारत का आधे से ज्यादा आयात व निर्यात मुंबई से होता था। इस ईस्ट इंडिया कंपनी यहां से चीन को अफीम का निर्यात करती थी भारतीय बिचोलिये और व्यापारी इस में हिस्सेदार थे।

3.2.4 कलकाताः–

कोलकाता को सुतानती, कोलकाता और गोविंदपुरी इन तीनों गावों को मिलाकर बनाया गया था। कंपनी ने इन तीनों में से सबसे दक्षिण में पढ़ने वाले गोविंदपुर गांव की जमीन को साफ करने के लिए वहां से व्यापारियों को हटाने का आदेश जारी कर दिया नवनिर्मित फोर्ट विलियम के इद–गिर्द एक विशाल जगह खाली छोड़ दी गई। जिसे स्थानीय लोग मैदान कहने लगे थे। खाली मैदान रखने का मकसद यह था कि अगर दुश्मन की सेना किले की तरह बड़े तो उसे पर किले से आसानी से गोलाबारी की जा सके। जब अंग्रेजों को कोलकाता में अपनी स्थिति स्थाई दिखाई देने लगी तो वह फोर्ट से बाहर किनारे पर भी आवासी इमारतें बनाने लगे।

3.2.5 मद्रासः–

फ्रैंच ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ प्रतिद्वद्विता के कारण अंग्रेजों को मद्रास की किलेबंदी करनी पड़ी और अपने प्रतिनिधियों को ज्यादा राजनीतिक व प्रशासनिक जिम्मेदारियों सौंप दी। 1761 में फ्रांसीसियों की हार के बाद में मद्रास और सुरक्षित हो गया। अब मद्रास एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक शहर के रूप में विकसित होने लगा। फोर्ट सेंट जॉर्ज व्हाइट टाउन का केंद्र बन गया। जहां ज्यादातर यूरोपीय रहते थे दीवारों और बुर्जों ने इस एक खास किस्म की घेरेबंदी का रूप दे दिया था। किले के अंदर रहने का फैसला रंग और धर्म के आधार पर किया जाता था। ब्लैक टाउन किले के बाहर विकसित हुआ। इस बस्ती में बुनकर, कारीगार, बिचौलिए और दुभाषीय जो कंपनी के व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

3.2.6 औपनिवेशिक ग्रामीण समुदायः–

औपनिवेशिक सरकार ने ग्रामीण समुदाय को समझाने में बहुत रुचि दिखाई क्योंकि वे यहां के शासन को अच्छी प्रकार से समझना चाहते थे। औपनिवेशिक काल में गांव किसान समुदाय और शहरी समाज के साथ इसके संबंध का प्रतिनिधित्व करते थे। औपनिवेशिक समय में जब संचार का विकास कम था तो ग्रामीण समुदाय आसपास के कुछ ही गांवों से जुड़ा हुआ था। परंतु जैसे–जैसे संचार में सुधार हुआ ग्रामीण की नेटवर्किंग में वृद्धि हुई। साथ ही साथ उन पर बाहरी कारकों का प्रभाव बड़े पैमाने पर पड़ा। भारत में औपनिवेशिक शासन के प्रारंभिक दशकों में अंग्रेजी औपनिवेशिक राज्य में भू राजस्व को अधिक से अधिक बढ़ाने की नीति अपनाई थी। भारत के गांव किसान समुदाय और शहरी समाज के साथ प्रतिनिधित्व करते हैं।

3.3.1 सामाजिक संगठनः–

ग्राम सभाः–

प्रत्येक गांव में एक ग्राम सभा होती थी। जिसमें महत्वपूर्ण और सामाजिक समूह के प्रतिनिधि होते थे। जो भाषा जाति, जनजाति, धर्म आदि पर आधारित होते थे। गांव से संबंधित या सामाजिक समूह के बीच के सभी मुद्दों पर ग्राम सभा में चर्चा की जाती थी। बदले में प्रत्येक सामाजिक समूह की अपनी आंतरिक परिषद होती थी जिसमें सभी घरों के प्रमुख सदस्य होते थे। समूह के पारंपरिक मानदंडों के संबंध में कोई विवाद, सदस्यों के बीच वैवाहिक, मुद्दों भूमि मुद्दो या किसी भी मुद्दे के लिए जिसमें समूह स्तर की परिषद की भागीदारी की आवश्यकता होती थी, सकल्प के लिए इसके समक्ष लाया जाता था। गांव मूल रूप से उस प्रमुख क्षेत्र से जुड़ा हुआ था जो एक ऐसे प्रमुख के अधीन कार्य करता था, जिसका श्रेष्ठ अधिकारी राजा क्षेत्र का शासक होता था। धीरे–धीरे औपनिवेशिक काल के दौरान ऐसी सरंचना ने अपना महत्व खो दिया और औपनिवेशिक काल के बाद यह पूरी तरह से गायब हो गया।

3.3.2 जाति और गांवः–

एक बहुजातीय गांव में कई जातियों के परिवार एक साथ रहते थे। आमतौर पर प्रत्येक जाति का सदस्य एक विशेष स्थान रखता था। प्रत्येक जाति का अपनी उत्पत्ति का इतिहास ज्यादातर मौखिक परंपरा के रूप में होता था। गांव में प्रत्येक जाति समूह अपने स्वयं के मानदंडों और नियमों के अनुसार प्रचलित पोशाक और गहने शादी और अन्य जीवन चक्र अनुष्ठानों के मामले में अध्याय थे।

एकजुटताः–

गांव में न केवल भौतिक एकता थी बल्कि सामाजिक एकजुटता भी थी । एक व्यक्ति अपने पैतृक रूप में गांव की पहचान करता था, जहां उसका जन्म होता एक ही गांव की विभिन्न जातियों के परिवार भी, इस तथ्य के बावजूद एकजुटता प्रदर्शित करते थे। एक जाति जिसके सदस्य बहुत कम होते थे। जरूरत पड़ने पर किसी दूसरे गांव की उसी जाति से समर्थन प्राप्त कर लेते थे जैसे किसी संघर्ष या शारीरिक हमला होने की स्थिति में।

3.3.3 संयुक्त परिवारः–

सयुक्त परिवार गांव में अधिक पाए जाते थे। सयुक्त परिवार आमतौर पर घरों के अर्थव्यवस्था से संबंधित होते थे। संयुक्त परिवार आमतौर पर एक ही छत के नीचे एक साथ रहते थे और एक ही परिसर को साझा करते थे। वे अपनी संयुक्त भूमि पर काम करते थे और संयुक्त संपत्ति का चलन था।

3.3.4 जजमानी प्रणालीः–

गांव में सामाजिक संबंध काफी हद तक कृषि अर्थव्यवस्था पर आधारित होते थे। प्रभावशाली जाति के पास गांव के अधिकांश कृषि योग्य भूमि होती थी। जजमान या यजमान गृहस्थी का कर्मकांड प्रधान होता

था और जमीन जायदाद का मालिक होता था। इस गृहस्थी को सेवा प्रदान करने वाली जातियों जैसे कि ब्राह्मण, बढ़ई ,धोबी नाई आदि के रूप में जानी जाती थी।

3.3.5 जोत और कृषिः–

गांव की अर्थव्यवस्था का आधार मूल रूप से कृषि था। हालांकि हर कोई भी भूमि या कृषि पर निर्भर नहीं था। कुछ लोग पशुपालन छोटा व्यापार और व्यवसाय, चिनाई, सिलाई ,चमड़े का काम, सरकारी कार्यालय में सेवा इत्यादि पर निर्भर थे। तीन चौथाई से अधिक परिवार कृषि पर निर्भर था। ये जमीदारों सीमांत किसानों और खेतिहर मजदूरों के परिवार थे।

3.3.6 कृषि की सास्कृतिक पृष्ठभूमिः–

भूमि स्वामित्व पद्धति और भूमि नियमों में जबरदस्त परिवर्तन हुआ है। औपनिवेशिक काल के दौरान राजस्व के व्यवस्थित संग्रह के साथ एक स्पष्ट तस्वीर उभरी थी। उस समय जमीदारी रैयतवारी और महलवारी प्रणाली प्रचलित थी। इसमें सलगन भूमिहीन कृषि श्रमिक की एक बड़ी आबादी मौजूद थी जो भूमि रखने के लिए हकदार नहीं थे। निम्नलिखित भूमि किराए मुक्त थी और दूसरों को हस्तांतरित नहीं की जा सकती थी।

1) ब्राह्मणों को दान दी गई भूमि (ब्रहादेय भूमि)

2) रखरखाव के लिए मंदिरों को दी गई भूमि (स्ट्रोट्रियम भूमि)

3) गांव (इनाम भूमि) में सेवा जातियों को दान की गई भूमि

4) मस्जिद (इनाम भूमि) से संबंधित भूमि।

फसल और प्रवासः– अधिकांश कृषि सिंचाई के विद्यमान स्रोतों जैसे गांव की टंकियों ,व्यक्तिगत खुले कुओं, नलकूपों और सिंचाई नहरों के बावजूद बारिश पर निर्भर करती थी। समय के साथ खाद्य फसलों की जगह वाणिज्य और नकदी फसलों ने ले ली। नकदी फसलों की सिंचाई और खेती के साधनों में ग्रामीण की सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों में महत्वपूर्ण बदलाव किए और इसके परिणाम स्वरूप सामाजिक संबंधों में भी बदलाव आया। नगदी के एक प्रमुख स्थान लेने के साथ संविधात्मक संबंध अधिक प्रचलित हो गए थे। इस प्रकार गांव के बाहर संचार सुविधाओं और रोजगार में वृद्धि हुई जिससे ग्रामीण का शहरों और देश के अन्य हिस्सों में प्रवास बड़ा साथ ही साथ भूमि कार्यकाल प्रणाली पर भी असर पड़ा।

3.3.7 गांव और वैश्वीकरण बाजारः–

औपनिवेशिक विद्वानों द्वारा वर्णित भारतीय गांव कभी भी आत्मनिर्भर नहीं थे। वे आर्थिक राजनीतिक और धार्मिक मामलों के व्यापक तंत्र का एक हिस्सा थे। जजमानी प्रणाली में कृषि अर्थव्यवस्था द्वारा समर्थित जाति आधारित सेवाएं प्रदान की। कृषि उपज पर आधारित कुटीर उद्योग जैसे कपास, रेशम, जुट और वन उपज से बने खिलौने भारतीय गांवों में उत्पादित होते थे। ये सभी छोटे स्तर के उद्योग थे जिन्हें व्यक्ति या

संयुक्त परिवार चलाते थे। औपनिवेशिक शासन के समय विनियम की बजाय नगद में भुगतान किया जाता था। ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत से कपास, जूट, हल्दी मसाले और कृषि उत्पाद खरीदें। बाद में उपनिवेशिक सरकार ने भारत के विभिन्न बंदरग्राह शहरों में उसी के उद्योग स्थापित किए

3.4 सारांशः–

भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज में औपनिवेशिक शक्तियों के पैठ के परिणाम स्वरूप अनेक सामाजिक आर्थिक विस्थापन हुए। यूरोपीय प्रभाव और भारतीय अनुक्रिया के पुराने नमूने की मदद से औपनिवेशिक शासन के दौरान भारत में हुए सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति की व्याख्या नहीं की जा सकती। औपनिवेशिक प्रभाव ने भारत की सामाजिक संस्थाओं को फिर से आकार दिया किंतु भारतीय सामाजिक शक्तियों ने भी सामाजिक रूपांतरण की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उपनिवेशिक द्वारा बेलगाम छोड़ी गई बाजारी शक्तियों ने भारतीय समाज के कवच को तोड़ दिया और आधुनिकरण के सीमित अपने औपनिवेशिक रूपांतरण ने भारत में विभिन्न सामाजिक वर्गों की उत्पत्ति और वृद्धि पर अपनी छाप छोड़ी। समस्त सामाजिक वर्गों को सामाजिक हितों के अधीन कर देने की एक आम प्रवृत्ति के बावजूद औपनिवेशिक राज्य द्वारा स्थापित नहीं औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था और प्रशासनिक संरचना ने एक अवसर और जोखिमों का मार्ग भी प्रशस्त किया औपनिवेशिक समाजिक अभियंत्रण और हस्तक्षेप के परिणाम स्वरुप विदेश से अनेक सामाजिक पहलों का आयात हुआ। किंतु औपनिवेशिक राज्य ने पारंपरिक श्रेणीबद्धता और कर्मकार्डी विभेदों के सिद्धांतों का भी समर्थन किया। जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि संपन्न भद्रजनों के पहले से मौजूद शक्तिशाली समूह को मजबूती मिली।

3.4 शब्दावली –

बिचौलिया	–	मध्यस्था
नौकरशाही	–	अधिकारी तंत्र
प्रवास	–	स्थानांतरगमन
विस्थापन	–	निर्वासन

3.5 स्वमूल्यांकन प्रश्न – निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (×) का चिन्ह लगाइए

1. नगरों के विकास में भौगोलिक स्थिति का महत्वपूर्ण स्थान रहता है। ( )
2. शुरूआत में बंबई दस टापूओं का ईलाका था। ( )
3. ओपनिवेशिक सरकार ने ग्रामीण समुदाय को समझने में बहुत रूची दिखाई। ( )
4. संयुक्त परिवार गाँव मं नहीं पाये जाते थे। ( )

उत्तर– 1 (✓) 2. (×) 3. (✓) 4. (×)

3.7 सन्दर्भ उपयोग पुस्तकें –

- परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम – पूर्णचन्द्र जोशी
- ओपनिवेशिक शासन – रूपा गुप्ता
- उपनिवेश, अभिव्यक्ति और प्रतिबन्ध – नरेन्द्र शुक्ल

3.8 अभ्यास कार्य प्रश्न

1. ओपनिवेशिक काल के प्रमुख शहरों का विवरण दो।
2. ओपनिवेशिक काल की प्रमुख छावनियों का वर्णन करो।
3. ग्राम सभा का विस्तार में वर्णन करो।
4. संयुक्त परिवार और जजमानी प्रणाली क्या थे?

इकाई चतुर्थ – प्रमुख क्षेत्रीय एवं व्यापारिक केन्द्र

इकाई की रूपरेखा

4.0. प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रमुख क्षेत्रीय एवं व्यापारिक केन्द्र

4.2.1. बम्बई

4.2.2. मद्रास

4.2.3. कलकत्ता

4.2.4. कानपुर

4.2.5. जमशेदपुर

4.2.6 लखनऊ

4.2.7 अन्य प्रमुख केन्द्र

4.3 सारांश

4.4 शब्दावली

4.5 स्वमूल्यांकन प्रश्न

4.6 संदर्भ/उपयोगी पुस्तकें

4.7 अभ्यास कार्य प्रश्न

4.0 प्रस्तावनाः–

औपनिवेशिक भारत, भारतीय उपमहाद्वीप का वह भू–भाग हैं जिस पर युरोपीय साम्राज्य था। भारतीय इतिहास में व्यापार–वाणिज्य की शुरुआत हड़प्पा काल से मानी जाती हैं मध्य काल में भी बहुत से व्यापारी व यात्री भारत आये। 15 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध्द एवं 17 वीं शताब्दी पूर्वार्ध के मध्य भारत में

विदेशी शक्तिया व्यापार करने के लिए आने लगी। इन शक्तियों में पुर्तगाली, अंग्रेज और फ्रांसिसी शामिल थे। अंत में अंग्रेजों ने भारत के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित कर लिए और इसी के साथ भारत में औपनिवेशिक शासन भी स्थापित हो गया।

4.1 उद्देश्य – इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि –

- प्रमुख क्षेत्रीय एवं व्यापारिक केन्द्र कहाँ–कहाँ थे।
- औपनिवेशिक काल में छोटी कस्बों की आर्थिक स्थिति कैसी थी।
- प्लासी और बक्सर के युद्धों के बारे में जानेंगे।
- भारत में रेलवे के विकास व कारखानों के बारे में जानेंगे।

4.2 प्रमुख क्षेत्रीय एवं व्यापारिक केन्द्रः–औपनिवेशिक काल में भारत का व्यापार चरम सीमा पर था। क्योकि उस समय भारत में नए–नए शहरों की स्थापना हो रही थी। उस समय शहरीकरण की प्रक्रिया से व्यापार को बल मिला और जो नए–नए शहर अस्तित्व में आये वह व्यापारिक केंद्रों के रूप में उभरने लगे। औपनिवेशिक काल में व्यापारिक गतिविधियों के लिए प्रमुख तीन शहर प्रसिद्ध थे

1) मद्रास

2) कलकत्ता

3) बम्बई

इस समय यह तीनों शहर मत्सय ग्रहण और बुनाई के लिए प्रसिद्ध थे। ये शहर ईस्ट इण्डिया कपनी की व्यापारिक गति –विधियों के कारण व्यापार के महत्वपूर्ण केंद्र बन गय। कंपनी के एजेंट 1639 में मद्रास तथा 1690 में कलकत्ता में बस गये। 1661 में बम्बई को ब्रिटिन के राजा ने कंपनी को दे दिया। जिसे उसने पुर्तगाल के शासक से अपनी पत्नी के दहेज के रूप में प्राप्त किया था। कंपनी ने इन तीनी बस्तियों में व्यापारिक और प्रशासनिक कार्यालय स्थापित किये।

दक्षिण भारत के नगरों में मदुरई व काँचीपुरम व्यापार के महत्वपूर्ण केंद्र थे। इनका धार्मिक महत्व भी था। 18वीं शताब्दी में नए–नए नगरों का विकास हुआ। अब मुगल राजधानियों, दिल्ली और आगरा ने अपनी राजनितिक प्रभुत्व खो दिया। अब नई क्षेत्रीय ताकतों का विकास क्षेत्रीय राजधनियों–लखनाऊ, हैदराबाद, पूना, नागपुर, बड़ौदा, तजौर के बढ़ते महत्व में परिलक्षित हुआ। व्यापारी, प्रशासक, शिल्पकार और अन्य लोग अब इन नए केन्द्रो में काम की तलाश के लिए आने लगे। इन स्थानों पपर आर्थिक गतिविधियों बढ़ने लगी।

व्यापार तंत्रो में परिवर्तन शहरी केन्द्रों के इतिहास में परिलक्षित हुए। यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों ने पहले मुगलकाल में ही विभिन स्थानों पर आधार स्थापित कर लिए थे। पुर्तगालियों ने 1510 में पणजी में,डचो ने 1605 में महली–पटनम में, अंग्रेजों ने मद्रास में 1639 तथा फ्राँसीसियों ने 1673 मंडीपेरी में। व्यापारिक गतिविधियों में विस्तार के साथ ही इन व्यापारिक केन्द्रों के आस – पास नगर विकसित होने लगे। 18वीं शताब्दी के अंत तक स्थल–आधारित साम्राज्यों का स्थान शक्तिशाली जल–आधारित यूरोपियो साम्राज्यों ने ले लिया। अंतराष्ट्रीय व्यापार, वाणिज्यवाद तथा पूँजीवाद की शक्तियाँ अब सम्राज्य के स्वरूप को परिभाषित करने लगी थी।

मध्य– अठारहवीं शताब्दी से परिवर्तन का एक नया चरण आरंभ हुआ। जब व्यापारिक गतिविधियाँ अन्य स्थानों पर केन्द्रित होने लगी। तो 17वीं शताब्दी में विकसित हुए सूरत, मछलीपट्नम तथा ढाका पतनोन्मुख हो गये।

1757 में प्लासी के युद्ध के बाद जैसे – जैसे अंग्रेजों ने राजनितिक नियंत्रण हासिल किया और ईस्ट इण्डिया कंपनी का व्यापार फैला। मद्रास, कलकत्ता व बंबई जैसे औपनिवेशिक बंदरगाह शहर तेजी से नई आर्थिक राजधानियों के रूप में उभरे। ये औपनिवेशिक प्रशासन और सत्ता के केन्द्र भी बन गया।

औपनिवेशिक काल में छोटे कस्बों के पास आर्थिक रूप से विकसित होने के ज्यादा मौके नहीं थे। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास व्यापार के महत्वपूर्ण केन्द्र बनते जा रहे थे। जिसके चलते अन्य शहर व्यापारिक गतिविधियों के मामले में ज्यादा विकसित नहीं हो सके। लेकिन फिर भी भारत की अर्थव्यवस्था में इन छोटे–छोटे शहरों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। प्लासी के युद्ध (23 जून,1757) के बाद भारत में औपनिवेशिक शासन की स्थापना हो गई थी। इस युद्ध के बाद अंग्रेजों का बगांल पर नियंत्रण स्थापित हो गया था। यह युद्ध बगांल के नवाब सिराजुदौलाऔर अंग्रेजों के बीच हुआ। इस युद्ध में अंग्रेजों की निर्णायक जीत हुई। पहले तो अंग्रेज केवल भारत में व्यापार करते थे, लेकिन युद्ध के बाद उन्होंने अधिक से अधिक क्षेत्रों को अधिक द्रिष्टी से मजबूत करने के लिए यहां पर व्यापार – वाणिज्य पर बल दिया। धीरे – धीरे ये क्षेत्र व्यापार के लिए प्रसिद्ध होने लगे।

प्लासी के बाद बक्सर का युद्ध (1764) हुआ यह युद्ध अंग्रेजी सेना और भीर कासिम (बगांल के नवाब), अवध के नवाब (शुजाउदौला) तथा मुगलबादशाह शाह आलम द्वितीय के बीच हुआ। इस युद्ध में भी अंग्रेज विजयी रहे। यह लड़ाई फरमान और दस्तक के दुरूपयोग और अंग्रेजों के व्यापार विस्तारवादी नीति व आकांशा की परिणाम थी। इस युद्ध के बाद भारत पर अंग्रेजो की पकड़ मजबूत होती गई।

अंग्रेज भारत से ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाना चाहते थे और उस लाभ द्वारा वे अपने देश (इग्लैंड) को समृद्ध बनाना चाहते थे। हलाकि उन्होंने भारत की पिछड़ेपन को दूर करने का प्रयास भी किया था। उन्होंने भारत में अंग्रेजों शिक्षा (1835) अनिवार्य कर दी और रेलवे का विकास भी किया।

भारत में रेलवे के विकास से व्यापार को बल मिला 1853 में पहली रेल बम्बई से थाना तक चलाई गई अब बदरगाहों को रेलवे से जोड़ दिया गया। इंग्लैंड में असर पड़ा। अब नए – नए कारखाने लगाए गए, उन कारखानों में मशीने लगाई गई,जो शीघ्रता से उत्पादन करती थी। अब भारत का आधुनिक औधोगिक विकास होने लगा।

1850 और 1914 के बीच भारत में व्यापार चरम सीमा पर था। उस समय भारत में बहुत से उद्योग स्थापित किये गए, इन उद्योगों में बहुत सी वस्तुओ का निर्माण किया जाता था। जो व्यापार के लिए बहुत जरूरी थी। अंग्रेजों का उदेश्य भारत में गना, अफीम, चाय, सूती वस्त्र, पटसन आदि की खेती कर इनको सस्ते दामों पर इंग्लैंड भेजना था।

औपनिवेशिक काल में बम्बई, कलकत्ता और मद्रास व्यापार के प्रमुख केन्द्र थे। इसके अलावा अन्य स्थान भी थे यह पर व्यापारिक गतिविधिया सपन्न की जाती थी। उनका वर्णन इस प्रकार हैं –

4.2.1 बम्बई :– औपनिवेशिक काल में बम्बई महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र था। उस समय बम्बई सूती कपडे के व्यापार के लिए बहुत प्रसिद्ध था। 1854 में भारत में पहली सूती वस्त्र मिल स्थापित हुई। यह सूती वस्त्र मिल बम्बई में ही स्थापित की गई थी। जिसके कारण बम्बई सूती वस्त्र के व्यापार का प्रमुख केन्द्र बन चुका था।

नागपुर :– नागपुर भी उस समय सूती वस्त्र के व्यापार के लिए प्रसिद्ध था।

शोलापुर :– औपनिवेशिक काल में शोलापुर में भी सूती वस्त्र मिलें लगाई गई।

अहमदाबाद :– अहमदाबाद भी सूती वस्त्रो के व्यापार के लिए प्रसिद्ध था।

इन शहरों में सूती वस्त्र मिले इसलिए लगाई गई क्योकि यहां पर कच्चा माल व सस्ते श्रमिक आसान से मिल जाते थे।इस प्रकार बम्बई का सूती वस्त्र आस–पास के क्षेत्रों के अलावा विदेशों में भी भेजा जाता था। प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध के समय सूती वस्त्र का व्यापार अपनी चरम सीमा पर था।

4.2.2 मद्रास :– औपनिवेशिक काल में मद्रास भी व्यापार का महत्वपूर्ण केन्द्र था। यह कपास और गर्म मसलों के व्यापार के लिए बहुत प्रसिद्ध था। इसके पश्चिम एशिया के लोगो से अच्छे सम्बद्ध थे। मद्रास के क्षेत्र ये उत्पादित वस्त्र की अंतराष्ट्रीय स्तर पर भी बहुत भाग थी। यहां के वस्त्र मध्य एशिया, फारस, आदि को निर्यात किये जाते थे। वाणिजियक केन्द्र होने के साथ–साथ मद्रास विभिन्न संस्कृतियों व धर्मों का भी केंद्र था। उस समय मद्रास चमड़ा, सीमेंट आदि के लिए भी प्रिसद्ध था।

4.2.3 कलकत्ता:– औपनिवेशिक काल में कलकत्ता भी महत्वपूर्ण केन्द्र था। कलकत्ता भारत का दूसरा सबसे बड़ा महानगर और पांचवा सबसे बड़ा बदरगाह हैं। यह औधोगिक केन्द्र और व्यापार का भी केंद्र हैं। कलकत्ता की हुगली नदी के किनारो पर जुट के कारखाने अवस्थित थे। इसके अलावा यह कागज

–उद्योग, सूती वस्त्र उद्योग आदि के लिए भी प्रसिद्ध था। कलकत्ता कागज के व्यापार के लिए भी प्रसिद्ध था। बगांल औपनिवेशिक काल में जूत के व्यापार के लिए बहुत प्रसिद्ध था । यहां पर 1855 में पहली जूत मिलें लगाई गई धीरे–धीरे यहां पर बहुत सी जूत मिले लगाई गई, जिससे बगांल उस समय जूत के व्यापार का केन्द्र बन गया। बगांल की जूत की विदेशों में भारी मांग थी। यह कोयले के व्यापार के लिए भी प्रसिद्ध था।

4.2.4 कानपुरः– औपनिवेशिक काल में कानपुर भी महत्वपूर्ण व्यापारिककेन्द्र था। उस समय यह चमड़े की वस्तुओं, ऊनि और सूती वस्त्रो के लिए बहुत प्रसिद्ध था।

4.2.5 जमशेदपुरः–औपनिवेशिक काल में जमशेदपुर लोहा व इस्पात के व्यापार का महत्वपूर्ण केन्द्र था। यह टाटा एन्ड स्टील कंपनी 1907 में बिहार के साकची नामक स्थापित की गई। प्रथम विश्व यह के बाद इस स्थान का नाम बदलकर जमशेदपुर रख दिया गया। प्रथम विश्व युद्ध के समय इस मिल का बना लोहा भारी मात्रा में विदेशों को निर्यात किया जाता था। इसके अलावा मैसूर भी लौहे व इस्पात के व्यापार के लिए प्रसिद्ध था।

4.2.6 लखनऊः– औपनिवेशिक काल में लखनाऊ कागज के व्यापार के लिए प्रसिद्ध था। कर्नाटक में भी उस समय कागज का व्यापार किया जाता था।

4.2.7 अन्य प्रमुख केन्द्रः– इसके अलावा गुजरात, उत्तर–प्रदेश, पंजाब और बगांल नील के व्यापार के लिए प्रसिद्ध थे। असम चाय के व्यापार के लिए प्रसिद्ध था। इसके अलावा भारत में उस समय कॉफी का भी व्यापार किया जाता था।

इसके अलावा भारत का विदेशी व्यापार भी कॉफी अनंत था। विदेशी व्यापारी भारत से मसाले , भोती , जवाहरात , हाथी के दांत की बनी वस्तुए , दला की मलमल , अहमदावाद के दूपहे , नील आदि विदेशो में ले जाया करते थे।

औपनिवेशिक काल में कलकत्ता, मद्रास और बम्बई व्यापारिक केन्द्रो के रूप में ज्यादा प्रसिद्ध थे। हालाँकि अन्य क्षेत्र भी व्यापार में भूमिका निका रहे थे , लेकिन इन तीनो शहरों का ज्यादा महत्व था। ये तीनों नगर तीर्व गति से नवीन आर्थिक राजधवियने के रूप में विकसित होने लगे और व्यापार के साथ साथ सत्ता व प्रशासन के भी महत्वपूर्ण केन्द्र भी बन गए। इन नगरों के प्रति भारतीय व्यापारियों का आकर्षण बढ़ने लगा था। जिसके चलते उस समय ये तीनों नजर बहुत प्रसिद्ध रहे।

4.3 सारांशः– इस प्रकार कहा जा सकता हैं कि औपनिवेशिक काल में भारत में व्यापार पर कंपनी का एकाधिकार स्थापित हो गया था। कंपनी ने भारत के व्यापार के विकास में हर सभव प्रयास किया। सड़कों व रेलों के साथ साथ यातायात के साधनों का विकास कर अंग्रेजों ने व्यापार को उनन्त बनाने का प्रयास किया।

4.4 शब्दावली

शिल्पकार – मकान बनाने वाला

पूँजीवाद – अर्थ प्रणाली

औपनिवेशिक – उपनिवेश में जुड़ा होना

धार्मिकता – किसी धर्म से जुड़ा होना

पिछड़ापन – किसी भी कार्य में पिछड़ना

4.5 स्वमूल्यांकन प्रश्न – निम्नलिखित कथनों पर सही या गलत का चिह्न लगाइए।

1. पुर्तगाल के शासक ने बम्बई को अपनी पत्नी के दहेज के रूप में प्राप्त किया था।
2. प्लासी का युद्ध फ्रांसीसी व बंगाल के नवाब सिराजुदौला के बीच हुआ था।
3. 1853 में पहली रेल बम्बई से थाना तक चलाई गई थी।
4. औपनिवेशिक काल अनाज के लिए प्रसिद्ध था।

उत्तर– 1. ✓ 2. × 3. ✓ 4. ×

4.6 संदर्भ/उपयोगी पुस्तकें

प्राचीन भारत में व्यापारिक मार्ग – डॉ० संजय कुमार पाण्डेय

व्यापारिक सन्नियम – गुप्ता एवं मित्तल

आधुनिक भारत का इतिहास – गुरू रहमान

4.7 अभ्यास कार्य प्रश्न –

1. भारत में अंग्रेजी व्यापार का वर्णन करो।
2. औपनिवेशिक काल में व्यापारिक गतिविधियों के लिए प्रमुख तीन शहरों का वर्णन।
3. 1757 में प्लासी के युद्ध के बाद अंग्रेजों का व्यापार विस्तार का वर्णन करो।
4. भारत में रेलवे के विकास के बाद व्यापार का कैसे विस्तार हुआ।

इकाई पाँच – औपनिवेशिक काल के प्रमुख बंदरगाह एवं कारखाने

इकाई की रूपरेखा

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 औपनिवेशिक काल के बंदरगाह

5.2.1 बम्बई

5.2.2 हुगली (बंगाल)

5.2.3 मद्रास (चेन्नई)

5.2.4 मर्मगोआ (गोवा)

5.2.5 सूरत (गुजरात)

5.2.6 नागापहिया (तमिलनाडु)

5.2.7 अन्य बंदरगाहें

5.3 प्रमुख कारखाने (उद्योग)

5.3.1 सूती वस्त उद्योग

5.3.2 पटसन

5.3.3 लोहा व इस्पात

5.3.4 चीनी

5.3.5 कागज

5.3.6 कोयला

5.3.7 चमड़ा

5.4 सारांश

5.5 शब्दावली

5.6 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तकें

5.7 अभ्यास कार्य प्रश्न

5.0 प्रस्तावनाः–

भारत के प्राचीन काल से ही पश्चिमी देशों के साथ अच्छे व्यापारिक संबंध स्थापित थे। मुगल काल में भारतीय माल यूरोपिय मंडियों से भेजा जाता था।1498 ईसवी के बाद पुर्तगालियों ने भारत के साथ व्यापार करना आरंभ कर दिया। 16वीं शताब्दी में उन्होंने भारतीय समुफ के साथ पश्चिम तट पर अनेक व्यापारिक बस्तियां स्थापित कर ली। उनके बाद हालैंड के डचो , फ्रांसीसियों तथा अंग्रेजों ने भी भारत के साथ व्यापार करना आरंभ कर दिया।

पुर्तगाली एवं डच आपस में लड़कर शक्तिहीन हो गए। फ्रांसीसियों एवं अंग्रेजों के बीच भी लंबे समय तक संघर्ष चलता रहा। अंत में भारतीय व्यापार पर ईस्ट इंडिया कंपनी की सर्वोच्चता स्थापित हो गई।भारत बहुत दिनों तक इंग्लैंड का उपनिवेश रहा है। सन 1600 ईसवी में स्थापित या कंपनी मंगल शासन उत्तराधिकारी बनी। प्रारंभ का उद्देश्य व्यापार करना तथा मुंबई कोलकाता और मद्रास के बंदरगाह से होकर शेष भारत में इसका संपर्क रहता था। शीघ्र ही यह कंपनी भारत में एक प्रमुख यूरोपीय शक्ति बन गई। इस कंपनी ने भारत की बदंरगाहो को अपने कब्जे में कर लिया तथा भारत में विभिन्न स्थानों पर कारखाने खोलें द्य धीरे–धीरे यह पूरे भारत पर कब्जा करने लगे। 1857 ईसवी तक ब्रिटिश सरकार ने भारत में खूब व्यापार किया। यह विदेशों के साथ भी व्यापार करते थी। विदेशी व्यापार भारत की प्रमुख बदरग्राहो द्वारा किया जाता था।

5.1 उद्देश्य – इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे कि –

- औपनिवेशिक काल में कारखानों की जानकारी प्राप्त होगी।
- बंदरगाहों के बारे में जानकारी मिलेगी।
- भारत की औपनिवेशिक काल अर्थव्यवस्था की जानकारी मिलेगी।
- भारतीय प्रमुख उद्योगों का पता चलेगा।

5.2 औपनिवेशिक काल के बंदरगाहः– भारत में औपनिवेशिक काल में बहुत से उद्योग में कारखानों की भी स्थापना की गई है। यह कारखाने अंग्रेजों द्वारा ही चलाए जाते थे। शुरुआत में अंग्रेज केवल व्यापार करने के इरादे से भारत आए थे, परंतु बाद में वह यहां की राजनीति में भी रुचि लेने लगे। उन्होंने भारत में बहुत से बंदरगाह व्यापार के लिए खोल दी तथा देश में इन्हीं बंदरगाहों से विदेशी व्यापार किया जाने लगा।

भारत में प्राचीन काल से ही व्यापार किया जा रहा है। मध्यकाल में ज्यादातर व्यापार जल मार्गो से किया जाता था। औपनिवेशिक काल में भी व्यापार जल मार्गो द्वारा यूरोपीय व एशियाई देशों के साथ किया जाने लगा। 1498 ईस्वी में पुर्तगाली नाविक वास्को–डि–गामा भारत आया था। उसके बाद यूरोप के अन्य देशों ने जलमार्गों द्वारा भारत व एशिया के अन्य देशों में जाना शुरू कर दिया।

इसी प्रकार भारत में पुर्तगाली डच अंग्रेज व फ्रसीसी भारत में व्यापार करने लगे। औपनिवेशिक काल में भारत में बहुत से महत्वपूर्ण बंदरगाहे थी, जहां से विदेशों के साथ व्यापार किया जाता था। अंग्रेज इन बंदरगाहे से इंग्लैंड का तैयार माल भारत में आयात करते थे तथा कच्चा माल इंग्लैंड को निर्यात किया जाता था, जहां पर व्यापारिक कार्य होते थे। वहीं पर प्रसिद्ध बंदरगाहे समुद्र के किनारे विस्तार करने लगे। इनमें से कुछ बंदरगाहे इस प्रकार थी।

5.2.1 बम्बईः—बम्बई भारत के पश्चिमी तट पर स्थित एक विशाल बंदरगाह थी ! यह सात द्वीपों को मिलकर शहर बना था। प्रारंभ में पुर्तगालियों के अधीन था। बंदरगाह होने के कारण यह औपनिवेशिक भारत की व्यापारिक राजधानी थी। यह शहर चालर्स द्वितीय को पुर्तगाल द्वारा दहेज स्वरूप मिला था। बम्बई बंदरगाह से अंग्रेजों ने बहुत व्यापार किया था। यहां से भारतीय कारखानों के लिए कच्चा माल किया जाता था। इस बंदरगाह से भारत की बहुत सी वस्तुएं निर्यात की जाती थी जिसमें वस्त्र सबसे महत्वपूर्ण है। इसके अलावा यहां विदेशी व यूरोप की भी काफी सारे जहाज आते थे।

5.2.2 हुगली (बगांल):—हुगली बंदरगाह कलकता से कुछ मील उत्तर में गंगा के तट पर स्थित है। 1559 ईसवी के आसपास पुर्तगाली लोग हुगली में आकर बस गए थे और इस बंदरगाह का उपयोग करने लगे थे 1651 ईस्वी में इसे अंग्रेजी ने अपने कब्जे में ले लिया था। हुगली से पुर्तगाली जौनपुर के बने मोटे गलीचे और रेशमी कपड़े ले जाते थे। 1659 ईस्वी में मुगलों ने हुगली को घेर कर उस पर कब्जा कर लिया इसके बाद हुगली की अवनति होने लगी। बाद के समय में डच लोगों ने चिनसुरा तथा फ्रांसीसीयो ने चंद्रनगर की बस्तियां बसायि।

5.2.3 मद्रास (चेन्नई):— चेन्नई बंदरगाह, मुंबई बंदरगाह के बाद भारत का दूसरा सबसे बड़ा बंदरगाह है। चेन्नई पोर्ट बंगाल की खाड़ी में सबसे बड़ा बंदरगाह है। यह बंदरगाह औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश के अधीन थी। अंग्रेज यहां से मूंगफली, तमाकू, प्याज, चाय ,मसाला ,चमड़ा, नारियल आदि निर्यात करते थे। आयात की वस्तु में कोयला, पेट्रोलियम ,धातु ,कागज, आदि थी। यह कोलकाता विशाखापिट्टनम, कोलम्बो, रंगून, पोर्टब्लेयर आदि स्थानों से समुद्र मार्ग द्वारा जुड़ा हुआ है। अंग्रेजों ने यहां से खूब लाभ कमाया था। वह यह लोगो से जबरदस्ती माल उठाते थे तथा वह इसकी मजदूरी भी नहीं देते थे यहां से यूरोप के देशों में वस्तुओं भेजी जाती थीं।

5.2.4 मर्मगाओ (गोवा):—1498 ईस्वी में वास्कोडिगाया यहां आने वाला पहला यूरोपिया यात्री बना जो समुद्र के रास्ते यहां आया था। उसके इस सफल अभियान ने यूरोप की अन्य शक्तियों को भारत पहुंचने के लिए दूसरे समुद्री रास्तों की तलाश के लिए प्रेरित किया। पुर्तगालियों ने गोवा पर पूरा अधिकार कर लिया था 1510 ईव गोवा को पुर्तगालियों की राजधानी बना दिया गया। यहां से पुर्तगालियों काफी व्यापार किया।

गोवा से जापान बंदूके निर्यात की जाती थी। यहां से मसाले यूरोप के देशों में भेजी जाने लगी। 1639 ईस्वी में डचों ने गोवा पर घेरा डाल दिया।

5.2.5 सूरत (गुजरात):– सूरत गुजरात की प्रमुख बंदरगाह है। यहां से भारत का काफी व्यापार विदेशों के साथ किया जाता था। यहां से कपड़े व सोने का निर्यात किया जाता था। इस शहर में वस्त्र व जहाज की कॉपी उद्योग थे जिसके कारण यहां की बंदरगाह हमेशा व्यस्त रहती थी। अंग्रेजों ने 1612 ईस्वी में पहली बार अपने व्यापारिक चौकी स्थापित की। यहां के सूती वस्त्र तथा सोने व चांदी की वस्तुएं प्रसिद्ध थी। यहां के वस्त्र उद्योग वस्त्रों को इंग्लैंड में निर्यात किया जाता था। सूरत के बढ़ते हुए निर्यात को देख अंग्रेज ने इंग्लैंड में भारतीय सूतती वस्त्र पर प्रतिबंध लगा दिया था।

5.2.6 नागापहिमा (तमिलनाडु):– यह बंदरगाह दक्षिण भारत के पूर्व मध्य तमिलनाडु राज्य के बंगाल की घाटी के तट पर स्थित है। ग्रीक व यूनानी काल में यूरोप के साथ व्यापार के लिए विख्यात थे। यह बंदरगाह पहले पुर्तगाली और बाद में डच उपनिवेश बना। चेन्नई के विकास के कारण इसका महत्व कम हो गया था। यह जहाज मरम्मत, मछली पकड़न इस्पात कर्म धातु का निर्माण शामिल है। यहां भी औपनिवेशिक काल में युरोपियनो द्वारा व्यापार किया जाता था। यहां काफी माल चीन, जर्काता मलाया आदि क्षेत्रों से निर्यात किया जाता था।

5.2.7 अन्य बंदरगाह:– औपनिवेशिक काल में इन बंदरगाह के अलावा भी काफी बंदरगाह थी जो व्यापार के लिए प्रसिद्ध थी। जिसमें मछलीपट्टम , कोचीन, चटगांव, कोलंबो, कालीकट, आदि थी। पुर्तगाल से यूरोप के व्यापारी तेल, चंदन, हाथीदांत, गर्म मसाले, चीन की रेशम, भारती मलमल खरीदते थे। अंग्रेजों ने भी अपने समय में यहां से बहुत व्यापार किया। वह इन बंदरगाहों से अंग्रेज इंग्लैंड में सूती वस्त्र, मसाले, विलासिता की वस्तुएं, नील, काफी, चाय आदि निर्यात की जाती थी।

5.3 प्रमुख कारखाने:–यूरोपीय कंपनियों के आगमन के बाद कुछ वर्षों तक देश का विदेशी व्यापार भारत के पक्ष में रहा और यहां की बनी वस्तुओं की मांग विदेशों में बनी रही। अंत ब्रिटेन जैसे देशों में भारतीय कपड़ों की मांग में भी निरंतर वृद्धि होती रही। ब्रिटेन के उद्योगपतियों के दबाव में ब्रिटिश सरकार ने भारतीय माल एवं इंग्लैंड में उसके आयात पर ऊंचे शुल्क तथा अनेक प्रतिबंध लगा दिए। औपनिवेशिक काल में भारत में प्रमुख कारखाने इस प्रकार है।

5.3.1 सूती वस्त्र उद्योग:– यह भारत का प्राचीन एवं सबसे बड़ा उद्योग था। सबसे पहले कोलकाता के निकट बोवरेच इस्टेट में 1818 में पहली सूती वस्त्र मिल लगाई गई, परंतु यह सफल नहीं हुई। इसके बाद 1851 ईस्वी में बम्बई स्पिनिंग एव वीविंग कंपनी की स्थापना की गई। इस मिल ने 1854 में अपना उत्पादन आरंभ किया। इसकी स्थापना कोवासजी नाना भाई डाबर ने की। इसी प्रकार अगले 10 वर्षों में दर्जनों सूती

वस्त्र मिले व कारखाने स्थापित किए गए अहमदाबाद, शोलापुर, नागपुर, मद्रास आदि स्थानों पर इस के कारखाने खोले गए। 1890 में अकेले बम्बई में 94 तथा इससे बाहर 43 मिले स्थापित थी।

5.3.2 पटसनः— पटसन उद्योग भी भारत का महत्वपूर्ण उद्योग था। भारत में पटसन को सन, पट, गोनी, भागा आदि नामों से पुकारा जाता था। जूट का आधुनिक कारखाना 1855 में जार्ज हैंडसर्न ने बंगाल में रिशारा नामक स्थान पर स्थापित किया था। 1859 में कलकाता के निकट बारा नगर में जॉर्ज ने स्टीम से चलने वाला जुट कारखाना खोला। इसके बाद 1862 में तीन कारखाने और लगाए गए। 1873 में देश में पांच जूट के कारखाने थे। 1880 में इनकी संख्या 20 हो गई। इस उद्योग से काफी लोगों की रोजगार मिला।

5.3.3 लोहा व इस्पातः— भारत में लोहे का प्रयोग लगभग 1000 ईसवी पूर्व मे आस पास हुआ था। लोहे का प्रयोग औद्योगिकरण, कृषि विकास तथा परिवहन में किया जाता है भारत में सबसे पहले लोहा कारखाना 1830 में लगा था। परंतु यह सफल नहीं हुआ। 1853 में इसके कार्य को ईस्ट इंडिया कंपनी आपन कंपनी ने अपनी देखरेख में ले लिया। 1960 में सिहभूम जिला में जमशेद जी टाटा ने 'टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी' बिहार में स्थापित की। इस उद्योग ने 1911 में लोहा तथा 1913 में स्टील का उत्पादन शुरू किया। 1918 में 'हरिपुर आयरन एंड स्टील कंपनी' स्थापित की गई। 1923 में मैसूर सरकार ने भारत में मैसूर आयरन एड स्टील वकर्स कंपनी स्थापित की।

5.3.4 चीनीः—19वीं शताब्दी से पहले गन्ने के सहायता से गुड, खांड व शक्कर बनाई जाती थी। बाद में शुरू चीनी बनाने का तरीका खोजा गया। भारत में यूरोपियन ढंग से चीनी बनाने का कार्य 19वीं शताब्दी से आरंभ हुआ। इस समय चीनी के बहुत मांग थी। भारत में चीनी के उद्योग लगाए गए। भारत में पहला चीनी का कारखाना 1930 में बिहार में लगाई गई। इसके बाद उत्तर प्रदेश में चीनी मिलें खोली गई। 1931 में देश में चीनी मिलों की संख्या 30 हो गई थी।

5.3.5 कागजः— भारत में पहले हाथ से कागज तैयार किया जाता था। औपनिवेशिक काल में पहली मिल 1870 में हुगली में 'वाली मिल्स' के नाम से स्थापित की गई। 1879 में लखनऊ में एक कागज मिल स्थापित की गई। 1882 में टीटागढ़ पेपर मिल तथा 1885 में पुणे में डेकन पेपर मिल कंपनी स्थापित की। 1889 में रानीगंज में पेपर मिल खोली गई। यह मिले विदेशों से आयात की गई लकड़ी की लगदी या सबई घास से कागज तैयार करती थी।

5.3.6 कोयलाः—19 वी शताब्दी में कोयला खान उद्योग भी भारत का एक महत्वपूर्ण उद्योग था। कोयला ने औद्योगिक क्रांति में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1853 से लेकर काफी समय बाद तक कोयले से रेल यातायात चलाया जाता था। ब्रिटिश काल में भारत में कोयले की खाने बंगाल, बिहार और उड़ीसा में स्थित

थी। 1820 में बंगाल में रानीगंज नामक स्थान पर खानो से कोयला निकालने का कार्य करना आरंभ हुआ। 1914 में तक कोयले का कुल उत्पादन 165 लाख टन से बढ़कर 1937 में 250 लाख टन तक पहुंच गया

5.3.7 चमड़ाः– भारत में प्राचीन काल से ही पशुपालन किया जाता रहा है। ब्रिटिश काल में चमड़ा उद्योग काफी विकसित हुआ। सर्वप्रथम 1860में कानपुर में आधुनिक ढंग से चमड़ा तैयार करने के लिए 'हॉर्नस एंड सैंडलर्श' कारखाना खोला गया। इसके बाद मुंबई, मद्रास में भी ऐसे कारखाने खोले गए। दक्षिण भारत का चमड़ा विदेशों में निर्यात किया जाने लगा।

5.4 सारांशः– प्राचीन काल से ही भारत उत्पादन तथा व्यापार का केन्द्र था। यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियाँ भारत से तैयार माल तथा मसालों के व्यापार के लिए भारत की ओर आकर्षित हुए। यूरोप में भारतीय मसालों की माँग की पूर्ति के लिए पुर्तगाली कालीकट के तट पर पहुँचे। इस व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा में डच अंग्रेज तथा फ्रांसीसी भी पीछे नहीं रहे। अंततः अंग्रेजों ने भारत को अपना उपनिवेश बना लिया।

5.5 शब्दावली

एशियाई –एशिया के देश

शुल्क– आयात या निर्यात पर लिया जाने वाला कर

मंडियाँ – सभी प्रकार की वस्तुओं का एक ही केन्द्र में बिकना

यूरोपीय – यूरोप के देश

5.6 स्वमूल्यांकन प्रश्न – निम्नलिखित कथनों पर सही या गलत का चिह्न लगाइए।

1. 1700 ईसवी में ब्रिटिश ईस्ट कम्पनी की स्थापना हुई।
2. पुर्तगाली नाविक वास्को–डी–गामा भारत में 1498 में भारत आया था।
3. हुगली बंदरगाह गुजरात में स्थित है।
4. भारत का सूती वस्त्र सूरत में सबसे ज्यादा बनाया जाता था।

उत्तर– (1)(×) (2)(✓) (3)(×) (4)(✓)

5.7 संदर्भ/उपयोगी पुस्तकें

औपनिवेशिक शासन – रूपा गुप्ता

आधुनिक भारत का इतिहास एवं विरासत (1757–1964) – पी०एल०गौतम

भारतीय इतिहास – अरविन्द्र कुमार पोखारा, डा० संजय कुमार त्रिपाठी

5.8 अभ्यास कार्य प्रश्न

1. भारत की औपनिवेशिक काल में प्रमुख बंदरगाहों का वर्णन करो।
2. औपनिवेशिक काल में प्रमुख कारखानों का वर्णन।
3. भारत में सूती वस्त्र उद्योग के बारे में बताइए।

4. हुगली बंदरगाह के बारे में बताइए।

खण्ड –तृतीय

ब्रिटिश आर्थिक नीतियाँ एवं प्रतिक्रिया

खण्ड पंचम में शामिल इकाईयों में आप पढेंगे कि भारत में ब्रिट्रिश आर्थिक नीतियों का क्या प्रभाव पड़ा। कृषकों तथा मजदूरों के अमानवीय शोषण के प्रतिक्रिया स्वरूप भारत में कृषक तथा मजदूर आन्दोलन प्रारम्भ हुए। सरकार, जमींदार तथा साहूकार के शोषण से बचने के लिये कृषकों तथा मजदूरों ने संगठन बनाये। जिसके परिणामस्वरूप उनमें राजनैतिक चेतना का विकास हुआ और कालांतर में ये संगठन भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का हिस्सा बन गए

इकाई 11 – श्रम समस्याएं एवं फैक्ट्री कानून

इकाई की रूपरेखा

11.0 प्रस्तवाना

11.1 उद्देश्य

11.2 श्रम समस्याएं

11.3 फैक्ट्री कानून

11.3.1 प्रथम फैक्ट्री एक्ट 1881

11.3.2 द्वितीय फैक्ट्री एक्ट 1891

11.3.3 तृतीय फैक्ट्री एक्ट 1911

11.3.4 चतुर्थ फैक्ट्री एक्ट 1922

11.3.5 पाँचवांफैक्ट्री एक्ट 1934

11.3.6 छठा फैक्ट्री एक्ट 1944

11.4 सारांश

11.5 शब्दावली

11.6 स्वमूल्यांकन

11.7 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तकें

11.8 अभ्यास कार्यप्रश्न

11.0.प्रस्तावना –

भारत प्राचीन काल से ही औद्योगिक देश था। यूरोपीय देश भारत से तैयार माल ले जाते थे। यह उत्पादन हमारे देश में कुटीर उद्योग से प्राप्त होता था। इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति के पश्चात् भारत के कुटीर उद्योग धंधे बन्द होने लगे और भारत धीरे–धीरे कच्चे माल का उत्पादक देश बनकर रह गया। भारत में आधुनिक उद्योग धंधों की शुरूआत 1850 से 1870 के बीच में पड़ी जिनमें व ृहद स्तर पर पूँजी तथा श्रम की आवश्यकता थी। कारखाना मालिक कम मजदूरी पर श्रमिकों से अधिक से अधिक काम लेना चाहते थे जिससे उनका मुनाफा ज्यादा हो। भारतीय श्रमिकों की दयनीय दशा की ओर सर्वप्रथम लंकाशायर के मील मालिकों ने ध्यान दिया। क्योंकि भारतीय सस्ते श्रम के कारण उन्हें कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा था। इसके फलस्वरूप श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए सरकार ने कई कानून बनाये।

11.1.उद्देश्य –

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे –

1- भारत में ब्रिटिया आर्थिक नीतियां कैसी थी।

2. श्रमिको की प्रमुख समस्याऐं क्या थी।

3. सरकार ने श्रम सुधार के लिए कौन–से कदम उठाये।

4. कारखाना कानून क्या है।

11.2 श्रम समस्याऐं –

भारत में आधुनिक उद्योग धंधों की शुरूआत 1850 से 1870 के बीच हुई। गवर्नर जरनल लॉर्ड डलहौजी के 'रेलवे मिनट' के पश्चात् भारतीय संचार साधनों में मशीनों का प्रयोग होने लगा। रेल लाईनों के बिछाने तथा इंजन के लिए कोयला निकालने में भारी संख्या में श्रमिकों का इस्तेमाल होने लगा। इसी के साथ रेलवे उद्योग से सम्बद्ध सहायक उद्योंगों के विकास में भी श्रमिकों की आवश्यकता थी।

1854 ई० में बम्बई में प्रथम कपड़ा मिल तथा कलकत्ता में पटसन मिल लगी। चाय उद्योग में भी भारी संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता थी। कपड़ा उद्योग में 1886 ई० में श्रमिकों की संख्या 74 हजार थी जो 1950 ई० में बढ़कर 1 लाख 95 हजार हो गई। पटसन उद्योग में 1879–80 में 27 हजार 494 श्रमिक काम करते थे जो 1906 ई० में 1 लाख 54 हजार से अधिक हो गये और कोयला खदानों में 1904 ई० में 75,749 श्रमिक कार्यरत् थे।

भारतीय श्रमिक वर्ग को कम मजदूरी, लम्बे कार्य के घण्टे, मिलों में अस्वस्थ वातावरण, बालकों से काम लेना तथा किसी भी प्रकार की सुविधाओं का नितान्त अभाव था। इस प्रकार का शोषण जो संसार में सभी श्रमिकों को प्रारम्भिक दिनों में सहने पड़े भारतीय श्रमिकों को औपनिवेशिक राज्य का दुर्व्यवहार भी सहना पड़ता था। भारतीय श्रमिक वर्ग को साम्राज्यवादी राजनैतिक व्यवस्था के साथ–साथ भारतीय और विदेशी पूँजीपतियों के शोषण का सामना करना पड़ता था।

भारतीय श्रमिकों की स्थिति में सुधार के लिए सबसे पहले माँग भारतीय श्रमिकों से नहीं बल्कि लंकाशायर के कपड़ा कारखानों के मालिकों की ओर से आई। उन्हें डर था कि भारतीय कपड़ा उद्योग सस्ते श्रम के कारण उनका प्रतिद्वन्दी न बन जाये। उन्होंने एक आयोग की माँग की जो भारतीय कारखानों में श्रमिकों की परिस्थितियों का अध्ययन करे। पहला आयोग 1875 में आया। इसकी रिपोर्ट के आधार पर प्रथम कारखानों का कानून (First Factory Act)1881 में पारित किया गया। किन्तु यह कानून अपर्याप्त था। 1891 दूसरा कारखाना कानून पारित किया गया। इसी प्रकार की परिस्थितियों के लिए 1909 ई० और 1911 ई० में पटसन के कारखानों के लिए भी कानून बने।

11.3 फैक्ट्री कानून –

भारत में लार्ड लिटन द्वारा 1875 ई० में नियुक्त कारखाना आयोग की रिपोर्ट के परिणामस्वरूप कई कानून बनाये गये।

11.3.1 प्रथम फैक्ट्री एक्ट 1881 –

यह कानून 1875 ई० में नियुक्त फैक्ट्री आयोग की रिपोर्ट के आधार पर वायसराय लार्ड रिपन ने 1881 में लागू किया। इसके प्रमुख प्रावधान इस प्रकार थे –

1. सात वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखानों में नहीं लगाया जायेगा।

2. 12 वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए काम करने के घण्टों को सीमित किया गया।

3. खतरनाक मशीनों के चारों ओर सुरक्षित घेरा बनाया जाये।

11.3.2 द्वितीय फैक्ट्री कानून –

द्वितीय फैक्ट्री कानून 1891 ई० में लार्ड लैंसडाउन के काल में आया। इसमें निम्न प्रावधान थे –

1. स्त्रियों के काम करने का समय 11 घण्टे निश्चित किया गया।

2. बच्चों के काम करने के लिए न्यूनतम आयु 7 से बढ़ाकर 9 वर्ष की गयी।

3. 9 से 14 वर्ष के बच्चों के मात्र 4 घण्टे कार्य कराने का आदेश दिया गया।

4. कार्य के दौरान डेढ़ घण्टे का मध्यावकाश तथा सप्ताह में एक दिन का अवकाश का प्रावधान किया गया।

11.3.3 तृतीय फैक्ट्र एक्ट 1911 –

यह कानून वायसराय लार्ड हॉर्डिंग के समय में पारित हुआ। इसके प्रमुख प्रावधान इस प्रकार थे।

1. इस अधिनियम में बच्चों को शाम 7 बजे से सुबह 5 बजे तक कार्य में नियोजित नहीं किया जा सकता था।

1. पुरूषों के लिए 12 घण्टे कार्य हेतु निश्चित किये गये।

2.

11.3.4 चतुर्थ फैक्ट्री एक्ट 1922 –

चतुर्थ फैक्ट्री एक्ट 1922 में वायसराय लार्ड रीडिंग के कार्यकाल में आया। इसके मुख्य प्रावधान इस प्रकार थे –

1. कारखानों मे नियोजित बच्चों की आयु 12 से 15 वर्ष के बीच में होनी चाहिए।

2. ऐसे उद्योग जहाँ 20 या 20 से ज्यादा श्रमिक कार्य कर रहे हो वह उद्योग विद्युत द्वारा संचालित होना चाहिए।

11.3.5 पाँचवा फैक्ट्री कानून 1934 –

वायसराय लार्ड विलिंगटन के समय पारित हुआ। इसके प्रमुख प्रावधान निम्न प्रकार थे –

1. मौसमी तथा दैनिक श्रमिक एवं कारखाना श्रमिकों में अंतर किया गया।

2. श्रमिकों को चिकित्सा सुविधा का प्रावधान किया गया।

3. बच्चों के कार्य के लिए प्रतिदिन 7 घण्टे निश्चित किये गये।

11.3.6 छठा फैक्ट्री एक्ट 1944 –

यह कानून वायसराय लार्ड वेवेल के समय में पारित हुआ। इसके प्रमुख प्रावधान इस प्रकार थे –

1. श्रमिकों को भोजनालय की सुविधा प्रदान की गई।

2. आपातकाल में मृत्यु होने पर फैक्ट्री क्षतिपूर्ति करने को बाध्य होगी।

3. अंगभंग होने पर श्रमिक को प्रत्येक अंगों का निर्धारित मूल्य दिया जायेगा।

4. श्रमिकों की कार्य अवधि 12 घण्टे से घटाकर 9 घण्टे कर दी गई।

11.4 सारांश –

भारतीय श्रमिकों की दशा सुधारने की माँग लंकाशायर के उद्योगपतियों ने उभरते हुए भारतीय कपड़े के उद्योग को सस्ते श्रम की उपलब्धता से डरकर की थी। किन्तु कारखाना कानूनों द्वारा भारतीय श्रमिक वर्ग

को अमानवीय शोषण से मुक्ति दिलाने का एक निरन्तर प्रयास किया गया। भारतीय श्रमिक वर्ग भारतीय एवं विदेशी पूँजीपतियों के शोषण का सामना करने के क्रम में भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन का हिस्सा बन गया जो अपने आर्थिक कल्याण और राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए प्रयास करने लगा।

11.5 शब्दावली –

कारखाना – काम करने की जगह/उद्योग स्थल।

उपनिवेश – दूसरे देश से आये हुए लोगों की बस्ती।

भोजनालय – रसोईघर।

क्षतिपूर्ति– मुआवजा।

11.6 स्वमूल्यांकन प्रश्न –

निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (✗) के चिन्ह लगाएं –

1. बम्बई में प्रथम कपड़ा मिल 1854 में लगी।

2. प्रथम फैक्ट्री एक्ट 1881 में लागू किया गया।

3. श्रमिकों की समस्याओं की ओर सर्वप्रथम मजदूर संगठनों ने ध्यान आकर्षित किया।

4. 1880 में पहला फैक्ट्री एक्ट कमीशन बना।

5. लार्ड वेवेल के समय छठा फैक्ट्री कानून पास हुआ।

उत्तर–(1) (✓), (2) (✓), (3) (✗), (4) (✗), (5) (✓)

11.7 सन्दर्भ उपयोगी पुस्तकें

एस.डी.पुनेकर – ट्रेड यूनियनिज्म इन इंडिया।

एस.ए.डांगे – ऑन द इंडियन ट्रेड इंडियन मूवमेंट।

पी.पी.लक्ष्मण – कांग्रेस एण्ड लेबर मूवमेंट इन इंडिया।

11.8 अभ्यास कार्य प्रश्न –

1. भारत में औद्योगिकरण के पश्चात् उत्पन्न श्रम समस्याओं का उल्लेख करें।

2. ब्रिटिश भारत में लाये गये विभिन्न फैक्ट्री कानूनों का वर्णन करें।

इकाई 12 – ब्रिटिश काल में मुद्रा प्रणाली

इकाई की रूपरेखा

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 मुद्रा प्रणाली

12.2.1 कागजी मुद्रा

12.2.2 न्यूनतम कोष प्रणाली

12.3 सारांश

12.4 शब्दावली

12.5 स्वमूल्यांकन प्रश्न

12.6 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तकें

12.7 अभ्यास कार्यप्रश्न

12.0 प्रस्तावना –

मुद्रा धन के उस रूप को कहते हैं जिससे दैनिक जीवन में खरीदफरोख्त करते हैं। इसमें विभिन्न वस्तुओं के सिक्के और कागज के नोट आते हैं। सरकार विधि द्वारा ऐसी व्यवस्था बनाती है कि उसके द्वारा जारी किये गये नोट नागरिकों द्वारा ग्राह्य हों। पहला कागज का नोट नीजी बैंको द्वारा जारी किया गया। 1934 में भारतीय रिजर्व बैंक को नोट जारी करने का अधिकार दिया गया।

12.1 उद्देश्य –

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे कि –

1. मुद्रा के प्रचलन का आरम्भ कैसे हुआ।
2. व्यापार में मुद्रा का महत्व।
3. कागजी मुद्रा का प्रारम्भ।
4. मुद्रा प्रचलन के विभिन्न चलन।

12.2 मुद्रा प्रणाली –

भारत में मुद्रा का प्रयोग प्रचीन काल से ही हो रहा है। प्राचीनतम् सिक्कों को 'बार कॉइन्स' कहा जाता था। प्रायः सिक्के ताँबे, चाँदी और सोने के होते थे। राजे महाराजे विशेष अवसर विवाह, जन्मदिन, विजय आदि पर भी सिक्के जारी करते थे। मध्यकाल में सिक्कों और मुहरों को जारी करना एक सामान्य प्रक्रिया बन गई। मुहम्मद बिन तुगलक ने चाँदी के सिक्कों के स्थान पर ताँबे के प्रतीक मुद्रा का प्रचलन करवाया। किन्तु यह प्रयोग असफल रहा। शेरशाह ने मुद्रा प्रणाली को स्थिरता प्रदान की। चाँदी के रूपये तथा ताँबे के सिक्कों के बीच 1:64 का अनुपात निर्धारित किया गया। चाँदी का यह सिक्का भारतीय मुद्रा प्रणाली का मानक बन गया।

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने जब बंगाल, बिहार पर विजय प्राप्त की तब मुगल शासकों की मुद्रा प्रणाली अव्यवस्था की शिकार थी। कमजोर मुगल शासकों के दौरान कुछ सूबेदारों ने स्वतंत्र या अर्धस्वतंत्र हैसियत प्राप्त कर ली तथा अपने–अपने क्षेत्रों में अलग–अलग मुद्रा निकाली। परिणामस्वरूप भारत में अनेक मुद्राएं प्रचलन में आ गयी। 1835 ई० से पूर्व तक इन मुद्राओं की कुल संख्या 994 थी।

जब कम्पनी के हाथ में शासन व्यवस्था आ गई तब कम्पनी का ध्यान मुद्रा व्यवस्था में व्याप्त अव्यवस्था की ओर हुआ। उन्होंने महसूस किया कि जहाँ कम्पनी का शासन है वहाँ मुद्रा में एक रूपता लाई जाए। किन्तु कम्पनी के क्षेत्र बहुत दूर थे, इसलिए प्रत्येक प्रेसीडेन्सी की अपनी–अपनी मुद्रा प्रचलित की गई। 1818 में कम्पनी की सरकार ने मद्रास प्रेसीडेंसी में सोने की मुद्रा के स्थान पर चाँदी के रूपये का प्रचलन किया गया। इसे मद्रास प्रेसीडेंसी का प्रमाणित सिक्का माना गया। इसमें 180 ग्रेन चाँदी होती थी। यही व्यवस्था 1823 में बम्बई प्रेजीडेन्सी में भी लागू भी गई। यह प्रणाली 1835 तक चलती रही।

1833 ई० में बंगाल के गवर्नर जनरल को भारत का गवर्नर जनरल घोषित कर दिया। इसके पश्चात् मुद्रा प्रणाली में व्याप्त अराजकता को दूर करने के लिए 1835 ई० में मुद्रा अधिनियम पास किया गया। इस प्रकार सारे ब्रिटिश भारत में चाँदी का रूपया विधिग्राह्य मुद्रा मान लिया गया। इसका खरीद मूल्य और धातु का मूल्य दोनों बराबर होते थे। इस अधिनियम के तहत भारत में सिल्वर स्टैण्डर्ड की स्थापना हुई, जो 1898 तक कायम रहा।

विश्व के कुछ देशों में 1874–93 के मध्य चाँदी की नई खदानों के कारण बड़े पैमाने पर चाँदी प्राप्त होने लगी जिससे चाँदी के अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों में भारी गिरावट हुई। विश्व के अनेक देशों ने चाँदी का विमुद्रीकरण कर 'स्वर्णमान' को अपना लिया। इसका प्रभाव भारत पर भी पड़ा सरकार ने इस स्थिति से निपटने के लिए 1892 में लार्ड हरसले की अध्यक्षता में एक आयोग बनाया। किन्तु इसकी संस्तुतियों से भी समस्या का समाधान नहीं हुआ। अतः 1898 में फाउलर समीति का गठन किया गया। जिसके आधार पर 1898 का मुद्रा अधिनियम पास हुआ। इस अधिनियम के द्वारा भारत में 'स्वर्णमान' की स्थापना हुई।

स्वर्णमान के अपनाने से विदेशी विनियम दरों में स्थिरता आई किन्तु आंतरिक कीमतों मे अस्थिरता बनी रही। इस स्थिति से निपटने के लिए चैम्बर लेन की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया गया। किन्तु प्रथम विश्व युद्ध के कारण इसकी संस्तुतियाँ क्रियान्वित नहीं हो सकी।

इसके पश्चात् हेनरी वैबिंगटन स्मिथ का एक नया मुद्रा आयोग अंकित हुआ। 1925 में हिल्टन यंग कमीशन ने मुद्रा प्रणाली के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सिफारिशें प्रस्तुत की सरकार ने सिफारिशें स्वीकार कर ली और 1927 में मुद्रा अधिनियम पारित कर दिया। भारतीय मुद्रा व्यवस्था को ठीक करने हेतु 1935 में रिजर्व बैंक की स्थापना की गई। इसी के द्वारा भारतीय मुद्रा व्यवस्था को निरूपित किया गया।

12.2.1 कागजी मुद्रा :–

भारत में कागज की मुद्रा के प्रचलन को तीन भागों में बाँटकर समझा जा सकता है।

(1) प्रेसीडेन्सी बैंको द्वारा कागजी मुद्रा का निर्गमन (1806–60)

(2) भारत सरका द्वारा कागजी मुद्रा का निर्गमन (1886–1934)

(3) रिजर्व बैंक द्वारा कागजी का निर्गमन (1935–47)

(1) (क) प्रथम चरण (1806–60)– भारत में आधिकारिक तौर पर कागजी मुद्रा का निर्गमन, सन् 1806 ई० में हुआ। कागजी मुद्रा जारी करने का अधिकार बैंक ऑफ बंगाल को मिला तत्पश्चात् बैंक ऑफ बम्बई को 1840 ई० में तथा बैंक ऑफ मद्रास को 1843 में मुद्रा जारी करने का अधिकार मिल गया। इस कागजी मुद्रा का प्रचलन कलकत्ता, बम्बई, मद्रास तक ही सीमित था। सरकार ने प्रत्येक प्रेजीडेंसी के लिये नोट जारी करने की सीमा तय कर रखी थी। कोई भी उससे अधिक नोट जारी नहीं कर सकता था। प्रत्येक प्रेजीडेंसी जितने मूल्य के नोट जारी करते उसका 1/4 मूल्य की (सोना या चाँदी) धातु रखना आवश्यक था। एक प्रेजीडेंसी द्वारा जारी मुद्रा दूसरी प्रेजीडेंसी में मान्य नहीं थी।

(2) द्वितीय चरण (1861–1934)– 1861 ई० में कागजी मुद्रा अधिनियम पास कर सरकार ने कागजी मुद्रा जारी करने का अधिकारी अपने हाथ में ले लिया। किन्तु सरकार भी निश्चित मात्रा में ही नोट जारी कर सकती थी। अधिक नोट तभी जारी किये जा सकते थे जब उतने मूल्य के चाँदी के सिक्के रख लिये जाये। सरकार ने दस, बीस, पचास, सौ, पाँच सौ, हजार, दस हजार मूल्यवर्ग के नोट जारी किए।

- सम्पूर्ण देश को कलकत्ता, बम्बई, मद्रास तीन निर्गमन क्षेत्रों में विभाजित किया गया। प्रत्येक क्षेत्र के जारी नोट उसी क्षेत्र में विधिग्रह थे।
- 1910 में निर्गम क्षेत्रों की संख्या बढ़ाकर 7 कर दी गयी। कागजी मुद्रा को चाँदी के सिक्कों में बदला जा सकता था।
- इसके तहत 'निश्चित विश्वास अर्जित निर्गमन प्रणाली' के आधार पर ही कागजी मुद्रा का निर्गमन होता था।
- प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारतीय मुद्रा प्रणाली पर व्यापक प्रभाव पड़ा। बड़े पैमानों पर लोगों ने कागजी मुद्रा को सिक्कों में बदलना शुरू कर दिया।

कागजी मुद्रा में सुधार के लिये युद्ध के पश्चात् बैविंग्टन आयोग तथा 1925 ई० में हिल्टन यंग कमीशन नियुक्त किया गया। यंग कमीशन की संस्तुतियाँ निम्न प्रकार थी –

- केन्द्रीय बैंक की स्थापना की जाये जिसे कागजी मुद्रा जारी करने का अधिकार हो।
- कागजी मुद्रा निधि तथा स्वर्णमान निधि को मिलाकर कागजी मुद्रा कोष की स्थापना की जाये।
- भारत में 'समानुपातिक निधि निर्गमन प्रणाली' के आधार पर मुद्रा जारी होनी चाहिए।

उक्त संस्तुतियों के आधार पर 1927 ई० में एक मुद्रा अधिनियम बनाया गया।

(3) तृतीय चरण (1935–1949) –1934 में रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया एक्ट बना जिसके तहत 1935 ई० में केन्द्रीय बैंक रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया की स्थापना हुई। इसे 'अनुपातिक कोष निधि प्रणाली' के तहत कागज के नोट जारी करने का अधिकार मिला।

- रिजर्व बैंक द्वारा जारी नोट को असीमित विधिग्रह करार दिया गया।
- भारत सरकार और रिजर्व बैंक अपनी कोष से जारी कागजी मुद्रा की परिवर्तनशीलता की गारण्टी करता है किन्तु 1 रूपये के नोट को अपरिवर्तनशील माना गया।

1956 ई० में रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया अधिनियम में परिवर्तन किया गया। अब अनुपातिक कोष निधि प्रणाली के स्थान पर न्यूनतम कोष प्रणाली अपना लिया गया। इस व्यवस्था के तहत 400 करोड़ की विदेशी प्रतिमूर्तियां और 115 करोड़ रूपये मूल्य का सोना या सोने के सिक्के रखना अनिवार्य कर दिया।

12.3 सारांश –

मुद्रा विनिमय का माध्यम है। वर्तमान में मुद्रा इतनी आवश्यक और महत्वपूर्ण है, कि बिना इसके एक भी दिन गुजारना असम्भव है। व्यक्ति जो काम करने के पश्चात् आय प्राप्त करता है वह मुद्रा के रूप में होती है। जिसका वह अपनी इच्छा अनुसार उपयोग करता है। मुद्रा के प्रचलन से वस्तु विनिमय प्रणाली में उत्पन्न होने वाली समस्याओं का समाधान हो गया। इससे व्यापार और वाणिज्य को गति मिली।

12.4 शब्दावली –

स्वर्णमान – एक मौद्रिक प्रणाली जिसमें सोने का एक तय वजन मानक आर्थिक मूल्य माना जाता है।विमुद्रीकरण – एक आर्थिक गतिविधि जिसके अन्तर्गत सरकार पुरानी मुद्रा को समाप्त कर देती है और नई मुद्रा चालू करती है।

प्रेसीडेन्सी– गवर्नर की अधीनता में शासन।

अधिनियम – विधान के अन्तर्गत बनाया गया नियम।

12.5 स्वमूल्यांकन प्रश्न –

निम्नलिखित कथन पर सही (✓) या गलत (✗) का चिन्ह लगाइए।

1. शेरशाह के काल में चाँदी और ताँबे का अनुपात 1:64 था।

2. 1835 से पूर्व 1000 मुद्राएं प्रचलन में थी।

3. 1833 में बंगाल के गवर्नर जनरल को भारत का गवर्नर जनरल घोषित किया।

4. कागजी मुद्रा जारी करने का सर्वप्रथम अधिकार बैंक ऑफ बंगाल को मिला।

5. 1925 में हिल्टन कमीशन नियुक्त किया गया।

उत्तर :– (1) (✓), (2) (✗), (3) (✓), (4) (✓), (5) (✓)

12.6 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तकें

सूरज बी. गुप्ता – मॉनीटरी प्लानिंग फॉर इंडिया

बी. सुब्रामनियम – सम इकॉनोमिक आस्पेक्ट्स ऑफ ब्रिटिश रूल इन इंडिया

12.7 अभ्यासकार्य प्रश्न :–

1. मुद्रा प्रणाली का वर्णन करें।

2. कागजी मुद्रा प्रचलन के विभिन्न चरणों का उल्लेख करें।

इकाई की रूपरेखा

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 कृषक आन्दोलन एवं कृषक संगठन

13.2.1 संथाल विद्रोह (1855–56)

13.2.2 नील आन्दोलन (1860)

13.2.3 पाबना विद्रोह (1873–76)

13.2.4 दक्कन विद्रोह (1875)

13.2.5 पंजाबी किसानों का असंतोष

13.2.6 चम्पारन व खेड़ा आन्दोलन

13.2.7 अवध में कृषक आन्दोलन

13.2.8 मालाबार किसान आन्दोलन

13.2.9 बारदोली कृषक आन्दोलन

13.2.10 किसान सभाओं का गठन

13.2.11 1940 के दशक के कृषक आन्दोलन

13.4 सारांश

13.5 शब्दावली

13.6 स्वमूल्यांकन प्रश्न

13.7 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तकें

13.7 अभ्यास कार्य प्रश्न

13.0 प्रस्तावना–

भारत में उपनिवेशवादी नितियों के प्रभाव से भारतीय कृषक वर्ग भी अप्रभावित नहीं रहा। उपनिवेशवादी आर्थिक नीतियों, भू–राजस्व की नवीन प्रणाली, प्रशासनिक और न्यायायिक व्यवस्था ने कृषकों के जीवन को अव्यवस्थित कर दिया। दस्तकारी उद्योगों के बर्बाद हो जाने से कृषि योग्य भूमि पर दबाव बढ़ गया। नवीन भू–राजस्व प्रणाली ने अनुपस्थित जमींदार वर्ग को ला दिया, जिसे कृषि विकास में कोई रूचि नहीं थी। वह अधिक से अधिक कर वसूलना चाहता था। सरकार, जमींदार, साहूकारों ने मिलकर किसानो को कंगाल कर दिया। देशी व विदेशी शोषण के चक्र को तोड़ने के लिए कृषकों ने नाकाम कोशिशे प्रारम्भ कर दी। कालान्तर में कृषकों ने शोषण से मुक्ति के लिए कृषक संगठनों की स्थापना भी प्रारम्भ हो गई।

13.1 उद्देश्य –

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे किः

- ब्रिटिश कालीन भारत में किसानों की समस्याओं को
- ब्रिटिश सरकार की भू–राजस्व नीतियों के परिणाम
- विभिन्न कृषक आन्दोलन।

13.2 कृषक आन्दोलन एवं संगठन–

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में देश में लगभग छोटे बड़े 24 अकाल पड़े। इसमें लाखों लोग भूख से मर गये। सूखे तथा अकालों के कारण ग्रामीण भारत की शांति व्यवस्था खराब हो गई। सरकारी नीतियों, साहूकारों के शोषण के परिणामस्वरूप कृषक विरोध करने लगे।

13.2.1 संथाल विद्रोह (1855–56) –

संथाल, मानभूमि, बड़ाभूमि, हजारीबाग, मिदानापुर, बाकुड़ा, वीरभूमि में रहते थे। 1793 में स्थाई भूमिकर व्यवस्था लागू होने के कारण जिस जमीन को संथाल सदियों से जोत रहे थे वह जमींदार की हो गई। जमींदारों की अत्यधिक मांग के कारण संथाल पैतृक भूमि छोड़कर राजमहल की पहाड़ियों के आस–पास बस गये। उन्होंने जंगलों को काटकर भूमि कृषि योग्य बना ली। शीघ्र ही जमींदारों ने इस भूमि के स्वामित्व का दावा कर दिया। संथालो की उपज, पशु, साहूकारों के हाथ में चले जा रहे थे। स्वयं वे और उनका परिवार साहूकारों के बंधक थे। किन्तु सबकुछ देकर भी ऋण समाप्त नहीं होता। सरकार भी साहूकारों का

पक्ष लेती और बलपूर्वक धनप्राप्ति और बेदखली करती। संथालों ने सिद्धू और कान्हू के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। सरकार ने भारी बल प्रयोग कर विद्रोह को दबाया। बाद में सरकार ने संथालो के रोष को शांत करने के लिए संथाल परगना बना दिया।

13.2.2 नील आन्दोलन (1860) –

बंगाल में नील उत्पादक किसानों को जबरन नील की खेती करने के लिए मजबूर करते थे। नील की खेती किसानों के लिए लाभप्रद नहीं थी। नील उत्पादक मामूली रकम अग्रिम देकर किसानों से करार लिखवा लेते। करार में नील की कीमत बाजार दर से काफी कम दर्ज की जाती थी। यदि कोई किसान करार से वापस लौटना चाहे तो उसे ऐसा नहीं करने दिया जाता। उसे लठेतों द्वारा आतंकित कर नील उत्पादन के लिए विवश किया जाता। अप्रैल 1860 में बारासात विभाग तथा पाबना और नदिया जिले के कृषकों ने हड़ताल कर दी। उन्होंने नील बोने से मना कर दिया। भारतीय इतिहास में यह कृषकों की प्रथम हड़ताल थी। इसकी शुरूआत नदिया जिले के गोवन्दिपुर गाँव से हुई। यहाँ दिगम्बर विश्वास व विष्णु विश्वास के नेतृत्व में कृषक एकजुट हुए।

नील आन्दोलन को बौद्धिक वर्ग का भी समर्थन मिला "हिन्दू पैट्रीयट" के सम्पादक हरिशचन्द्र मुखर्जी ने किसानों के शोषण सरकारी अधिकारियों के पक्षपात, विभिन्न स्थानों पर किसानों के संघर्ष की खबरे लगातार अपने अखबार में छापी। इस सन्दर्भ में दीन–बन्धु मित्र के नाटक "नील दर्पण" का भी उल्लेख किया जा सकता है। इसमें किसानों के शोषण पर प्रकार डाला गया है। सरकार ने नवम्बर 1860 में अधिसूचना जारी की कि रैयत को नील उत्पादन के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है।

13.2.3 पावना विद्रोह (1873–76) –

1870 के दशक में बंगाल के ज्यादातर इलाकों में लगान की दरें बढ़ा दी थी। जमींदार किसानों को 1859 के अधिनियम में मिले अधिकारों से वंचित रखते, अत्याचार करते, जमीन से बेदखल कर देते, उनकी फसलों एवं पशुओं को जब्त कर लेते। इससे किसानों मे असंतोष बढ़ता जा रहा था। 1873 में पावना जिले के युसूफशाही परगने में किसान संघ की स्थापना की गई। संघ ने लगान हड़ताल की। यह आन्दोलन धीरे–धीरे बंगाल के दूसरे जिलों में भी फैल गया। छिटपुट हिंसक घटनाओं को छोड़कर किसान संघटन

बनाकर शांतिपूर्वक संघर्ष कर रहे थे। सकारी दबाव और किसान संघटनों की शक्ति के कारण बहुत से जमींदारों समझौते कर लिये। इस आन्दोलन के नेताओं ने स्पष्ट किया की हम सरकार के खिलाफ नहीं है जमींदार के खिलाफ हैं। इनका नारा था "हम महारानी और सिर्फ महारानी की रैयत होना चाहते हैं।"

13.2.4 दक्कन विद्रोह (1875) –

यहाँ रैयतवाड़ी व्यवस्था के तहत किसानों को जमीन का मालिक माना जाता था किन्तु लगान की दरें अधिक होने के कारण किसान साहूकारों, महाजनों के चंगुल में फसता जा रहा था। ज्यादातर साहूकार गुजराती और मारवाड़ी थे। किसान अपनढ़ थे। साहूकार लेखों में हेराफेरी करते और किसानों से अंगूठा लगवा लेते। प्रायः दिवानी फैसले साहूकारों के पक्ष में होते थे।

1874 में सीरूर ताल्लुके के मारवाड़ी साहूकार कल्लूराम ने बालासाहेब देशमुख के विरूद्ध बेदखली का आज्ञापत्र ले लिया और बाबासाहेब के मकान को कब्जे में ले लिया। इससे ग्रामवासियों ने साहूकार का बहिष्कार शुरू कर दिया। जून 1875 तक ये आन्दोलन पूरे पूना जिले में फैल गया। किसानों ने साहूकारों के मकानों, दुकानों पर आक्रमण किया। लेखपत्र जिन पर किसानों के हस्ताक्षर या अंगूठे थे, उन्हें जला दिया। यह विद्रोह इतना लोकप्रिय था कि सरकार को किसी भी विद्रोही के खिलाफ कोई साक्ष्य नहीं मिला। सरकार ने दक्कन उपद्रव आयोग नियुक्त किया। 1879 में कृषक राहत अधिनियम पास किया गया। जिसमें दीवानी संहिता की कुछ धाराओं पर रोक लगा दी अब कृषकों को ऋण न वापस करने पर जेल में बंद नहीं किया जा सकता था।

13.2.5 पंजाबी किसानों का असंतोष –

19वी शताब्दी के अंतिम दो दशकों में ग्रामीण ऋणग्रस्तता तथा कृषकों की भूमि का गैर कृषकों के पास हस्तान्तरण भारत में सामान्य बात थी। पंजाब में यह प्रश्न सांप्रदायिक भी था। 1895 में भारत सरकार ने प्रांतीय सरकारों को कृषि भूमि के हस्तान्तरण पर रोक लगाने के लिये कहा। 1900ई० में सरकार ने पंजाब भूमि अन्याक्रमण अधिनियम पारित किया। इसके अनुसार भूमि को तीन भागों में बाँट दिया गया। कृषक, कानून द्वारा स्थापित कृषक तथा तीसरा वर्ग गैर कृषकों का था। प्रथम वर्ग के लोग दूसरे या तीसरे वर्ग को भूमि बेचने, गिरवी रखने की अनुमति नहीं थी। किन्तु दूसरे व तीसरे वर्ग के लोग आपस में भूमि का लेन–देन कर सकते थे।

13.2.6 चम्पारन व खेड़ा आन्दोलन –

भारतीय राजनीति में गाँधी जी के आगमन से कृषकों को भी उम्मीद बंधी की उनकी समस्याओं का समाधान गाँधी जी करा सकते हैं। गाँधी जी ने चम्पारन तथा खेड़ा में कृषक आन्दोलन में भाग लिया। चम्पारन उत्तरी बिहार का एक जिला है जहाँ यूरोपीय नील उत्पादक कृषकों का उत्पीड़न करते थे। 19वीं सदी के आरम्भ में नील उत्पादकों ने कृषकों से अनुबंध कर लिया था कि कृषक अपनी जमीन 3/20 वे हिस्से में नील की खेती करेंगे। जर्मनी के रासायनिक रंगों के कारण नील उत्पादन लाभदायक नहीं रह गया था। गोरे भी इसे बंद करना चाहते थे किन्तु वे किसानों की मजबूरी का फायदा उठाना चाहते थे। चम्पारन के रामचन्द्र शुक्ला गाँधी जी को चम्पारन बुलाना चाहते थे। गाँधी जी ने बाबू राजेनद्र प्रसाद की सहायता से कृषकों की वास्तविक स्थिति की जाँच की, प्रारम्भ में सराकर ने गाँधी जी को गिरफ्तार कर लिया। किन्तु बाद में सरकार ने एक जाँच समीति नियुक्त की जिसके फलस्वरूप चम्पारन कृषक अधिनियम पारित किया गया और बागान मालिक अवैध वसूली का 25 प्रतिशत वापस करने के लिये तैयार हो गये।

खेड़ा का कृषक आन्दोलन बम्बई सरकार के विरूद्ध था। 1918 के वसन्त ऋतु में फसले नष्ट हो गई थी। भूमिकर नियमों के अनुसार फसल नष्ट होने या 25 प्रतिशत कम होने पर भूमिकर पूरा माफ होना चाहिए। किन्तु सरकार इसके लिए तैयार नहीं थी। गाँधी जी ने कृषकों को संगठित किया। बड़ी संख्या में कृषकों ने सत्याग्रह किया तथा जेल गये। इस आन्दोलन में 'गुजरात सभा' ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह आन्दोलन 1918 जून तक चलता रहा। अन्त में सरकार ने गाँधी जी की माँग स्वीकार कर ली।

13.2.7 अवध में कृषक आन्दोलन –

अवध पर अंग्रेजी हुकूमत कायम होने के पश्चात् सरकार और जमींदारों ने कृषकों का शोषण प्रारम्भ कर दिया। होम रूल लीग के कार्यकर्ताओं ने 'किसान सभा' का गठन किया। गौरी शंकर मिश्र, इंद्रनरायण द्विवेदी और मदन मोहन मालवीय ने 1918 में 'उ०प्र० किसान सभा' का गठन किया। जून 1919 तक किसान सभा की 450 शाखायें गठित हो गई। किसान सभा ने किसानों को जागरूक बनाया। प्रतापगढ़ जिले में किसानों का संगठित विद्रोह सामने आया। झिंगुरी सिंह और दुर्गपाल ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शीघ्र ही बाबा रामचन्द्र ने किसानों की समस्याओं को लेकर जवाहर लाल नेहरू से मुलाकात की डिप्टी कमीशनर मेहता किसानों की समस्याओं के समाधान के लिए प्रयासरत् थे, किन्तु उनके छुट्टी पर चले जाने के कारण ताल्लुकेदारों ने किसान आन्दोलन कुचलने की कोशिक की। बाबा रामचन्द को झूठे आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया। जिसका किसानों ने संगठित रूप में विरोध किया। स्थिति बिगड़ती देख सरकार ने मेहता को छुट्टी से वापस बुला लिया, उन्होंने झूठे आरोप को समाप्त कर दिया, और जमींदारों पर अपने व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए दबाव डाला।

हरदोई, बहराइच, सीतापुर में भी किसानों के असंतोष ने आन्दोलन का रूप ले लिया। इसे 'एका आन्दोलन' का नाम दिया गया। इसके नेता मदारी पासी थे। सरकार ने बलपूर्वक मार्च 1922 इस आन्दोलन का दमन कर दिया।

13.2.8 मालाबार किसान आन्दोलन –

दक्षिण मालाबार के मुसलमान पट्टेदारों तथा खेतिहरों को प्रायः मोपला कहते थे। ये लोग हिन्दू निम्न जातियों से मुसलमान बन गये थे। इनमें से कुछ अरबी मुसलमानों के वंशज भी थे। जो 8वी, 9वी शताब्दी में यहाँ आये थे। ये प्रायः खेती करते थे या हिन्दू जमींदारों के बंधुआ मजदूर थे और जमींदार हिन्दू जाति के नम्बूदरी तथा नायर जातियों से थे। अत्यधिक मालगुजारी, पट्टेदारी की असुरक्षा मोपलाओं की प्रमुख समस्याएं थी। दूसरी ओर अंग्रेजी सरकार के खिलाफत विरोधी नीतियों के कारण मोपला सरकार से भी नाराज थे। मोपलाओं के सर्वमान्य धार्मिक नेता अली मुसालियर ने विद्रोह कर दिया। सरकारी भवनों पर खिलाफत के झण्डे लहरा दिये। 20 अगस्त 1921 को इस मस्जिद में अली मुसालियार को गिरफ्तार करने का प्रयास किया गया। वह गिरफ्तार नहीं हुआ। किन्तु इससे विद्रोह भड़क उठा। कुछ यूरोपीयों की हत्या कर दी गयी और सरकारी सम्पत्तियों को नष्ट किया गया।

सरकार ने इस विद्रोह का दबाने के लिए सेना की टुकड़ी भेजी। सरकार के दबाव में हिन्दू हुकुमत का साथ देने लगे, जिसके कारण मोपलाओं ने हिन्दुओं पर भी हमले किये, उनकी हत्या की और बलात धर्म परिवर्तन के मामले बढ़ने लगे। जो आन्दोलन सरकार और जमींदारों के खिलाफ शुरू हुआ था, उसने सांप्रदायिक रंग ले लिया। सरकार ने भारी बल प्रयोग कर इसे दबा लिया।

13.2.9 बारदोली कृषक आन्दोलन –

सूदखोर और जमींदार गरीब कालिपराज जनता का आर्थिक और यौन शोषण कर रहे थे। नरहरि पारिख और जगतराम दवे ने 'हाली पद्धति' को अमानवीय और शोषक पद्धति बताया था। जनवरी 1926 ई० लगान पुनरीक्षण अधिकारी ने 30 प्रतिशत लगान बढ़ोतरी की सिफारिश की जिसका कांग्रेस के नेताओं ने विरोध शुरू कर दिया। इसकी जाँच के 'बारदोली' जाँच समीति का गठन किया गया। जिसने लगान बढ़ोतरी को अनुचित बताया। बम्बई सरकार के राजस्व विभाग के प्रमुख अधिकारी से किसानों का एक प्रतिनिधि मण्डल मिला, विधान परिषद में भी मामला उठाया गया। सरकार ने लगान बढ़ोतरी 30 प्रतिशत से घटाकर 21.97 प्रतिशत कर दी, जिसे किसानों ने स्वीकार नही किया।

किसानों के आन्दोलन सरदार वल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में प्रखर होता गया। उन्होंने लगान न देने की सलाह दी। सरकार का विरोध लगातार बढ़ रहा था। 2 अगस्त 1928 गाँधी जी भी बारदोली पहुँच गये। अंततः सरकार ने मामले की गम्भीरता को समझा और ब्रूमफीस्ड मामले की जाँच की और माना कि 30 प्रतिशत बढ़ोतरी गलत है इसे घटाकर 6.03 प्रतिशत कर दिया गया।

13.2.10 किसान सभाओं का गठन –

1920 के दशक में बंगाल, पंजाब, यू.पी. में किसान सभाओं का गठन हुआ था। 1928 में आंध्र प्रांतीय रयत सभा बनी। 1936 ई० में लखनऊ में अखिल भारतीय किसान सभा का गठन हुआ। इसका उद्देश्य किसानों का शोषण से रक्षा करना था। 1936 में ही बिहार में 'बाकाश्त' (स्वयं जोती हुई भूमि) के विरूद्ध आन्दोलन किया गया। जमींदार अधिक से अधिक भूमि इस वर्ग में लाना चाहते थे। 18 अक्टूबर 1937 को किसानों ने कृषक दिवस मनाया।

13.2.11 1940 के दशक के कृषक आन्दोलन–

स्वतंत्रता के पूर्व वर्षों में तीन प्रमुख आन्दोलन बंगाल का तेभागा आन्दोलन, दक्कन का तेलंगाना आन्दोलन और पश्चिमी भारत का वर्ली विद्रोह। तेभागा आन्दोलन में लम्बे समय से बर्गादार (फसल के भागीदार) जमींदारों, साहूकारों, व्यापारियों तथा सरकार विरूद्ध आन्दोलन कर रहे थे। सुहरावर्दी सरकार ने बर्गादारी विधेयक पारित किया, जिससे भाटक(किराया) देने वालो को कुछ राहत मिली।

तेलंगाना का आन्दोलन 1946–51 तक रहा। यह आन्दोलन निजाम, साहूकार, व्यापारी और जमींदार के विरूद्ध था। हैदराबाद रियासत की एक तिहाई जमीन निजाम की थी। जिस पर 20 लाख निर्धन परिवार जीवन यापन करते थे। इस आन्दोलन में कम्यूनिस्ट पार्टी ने विशेष भूमिका निभाई।

बम्बई के सम्यवर्ली जनजाति के लोग रहते थे जिनका शोषण जंगल के ठेकेदार, साहूकार, धनी कृषक, जमींदार करते थे, जिन्हें सरकार का समर्थन प्राप्त था। इसके विरूद्ध 1945 ई० में आन्दोलन आरम्भ हुआ।

13.4 सारांश –

अंग्रेज सरकार की नीतियों ने कृषि व्यवस्था के ढांचे को नष्ट कर दिया। किसान सरकार, जमींदार, साहूकार, व्यापारी के चंगुल में फंस गया। जिनके असहनीय उत्पीड़न से किसानों की आत्मा चितकार उठी।

इस स्थिति को अकाल तथा सूखे ने और भी भयंकर बना दिया, जिसके कारण किसानों ने विद्रोह कर दिये। प्रारम्भ में किसानों के विद्रोह संगठित न होने के कारण राजनैतिक रूप नहीं धारण कर सके। किन्तु 20वी शताब्दी में किसानों में जागृति आई तथा अनेक किसान संगठनों की स्थापना हुई।

13.5 शब्दावली

बाकाश्त भूमि – स्वयं जोती हुई भूमि

बर्गादार – फसल के भागीदार

भाटक – किराया

तिनकठिया – भूमि का 3/20वां हिस्सा

13.6 स्वमूल्यांकन प्रश्न –

निम्नलिखित कथनों में सही (✓) गलत (✗) चिन्ह लगाये।

1. संथालों का नेतृत्व बिरसा मुण्डा ने किया।

2. नील आन्दोलन का नेतुत्व दिगम्बर विश्वास और विष्णु विश्वास ने किया।

3. पाबना विद्रोह 1873 में शुरू हुआ।

4. 1880 में कृषक राइट अधिनियिम पास किया गया।

5. एका आन्दोलन का नेतृत्व मदारी पासी ने किया।

उत्तर – (1) (✗), (2) (✓), (3) (✓), (4) (✗), (5) (✓),

13.7 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तकें

- ए.आर.देसाई – पीसेंट स्ट्रगल इन इंडिया
- डी.एन. धनगर – एग्रेरियन मूवमेंट एण्ड गाँधियन पॉलिटिक्स
- एल. नटराजन – पीसेंट अपराइजिंग इन इंडिया
- एस. सेन – एग्रेरियन रिलेशंस इन इंडिया

13.8 अभ्यास कार्य प्रश्न

1. किसानों की प्रमुख समस्याओं पर प्रकाश डालिये।

2. किसान आन्दोलनों में गाँधी जी की भूमिका पर प्रकाश डालिये।

3. 19वी शताब्दी के किसान आन्दोलनों का उल्लेख करिए।

4. 20वी शताब्दी के किसान आन्दोलनों का वर्णन करें।

इकाई 14 : ट्रेड यूनियन तथा समाजवादी एवं साम्यवादी आन्दोलन

इकाई की रूपरेखा

14.0 प्रस्तावना

14.1 उद्देश्य

14.2 ट्रेड यूनियन

14.3 समाजवादी एवं साम्यवादी आन्दोलन

14.3.1 साम्यवादी दल

14.3.2 कांग्रेस साम्राज्यवादी दल

14.4 सारांश

14.5 शब्दावली

14.6 स्वमूल्यांकन प्रश्न

14.7 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तकें

14.8 अभ्यास कार्य प्रश्न

14.0 प्रस्तावना

भारत में आधुनिक उद्योग धन्धों की शुरूआत 1850 के दशक में हुई। 1854 में प्रथम कपड़ा मिल लगी, कलकत्ता में प्रथम पटसन मिल लगी। रेलवे लाइन बिछाने, कोयला निकालने में हजारों श्रमिकों का प्रयोग होने लगा। भारतीय श्रमिकों को कम मजूदरी, लम्बे कार्य के घंटे, मिलों के अस्वस्थ वातावरण, बच्चों से काम लेना आदि भीषण समस्यायें थी। लंकाशायर के मिल मालिकों के प्रयास से श्रमिको की दशाओं में कुछ परिवर्तन आया। फस भी क्रांति के बाद अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी संगठन का गठन हुआ। राष्ट्र संघ (League of Nation) ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का गठन किया। जिससे श्रमिकों की समस्याओं की ओर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ध्यान गया।

वाम शब्द का प्रयोग पहली बार फ्रांस की क्रांति में हुआ था। कालान्तर में समाजवाद तथा साम्यवाद के उत्थान के पश्चात् वामपन्थी शब्द का प्रयोग होने लगा। आर्थिक शोषण के कारण मार्क्स के विचारों से प्रभावित हो कर रूस में साम्यवादी सरकार बनी जिसका प्रभाव भारत पर भी पड़ा। भारतीय जन मानस भी सम्यवाद की ओर आकर्षित हुआ।

14.1 उद्देश्य –

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे कि –

- श्रमिकों की समस्यायें।
- विभिन्न ट्रेड यूनियन एवं उनका महत्व।
- भारत में साम्यवादी आन्दोलन।
- समाजवादी आन्दोलन।

14.2 ट्रेड यूनियन

भारत में आधुनिक उद्योग धंधों की स्थापना के साथ ही श्रमिकों के अमानवीय शोषण की शुरूआत भी हो गई। इस ओर सर्वप्रथम लंकाशायर के उद्योगपतियों ने ध्यान आकर्षित किया। जिसके परिणामस्वरूप भारत सरकार ने प्रथम तथा द्वितीय कारखाना कानून पास किए। जिसमें श्रमिक वर्ग को कुछ सहुलियतें प्रदान की गई। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में भारतीय कामगारों में राजनैतिक जागृति भी दिखाई पड़ने लगी। जब लोमान्य तिलक को जेल भेजने के विरोध में बम्बई के श्रमिकों ने हड़ताल कर दी।

भारतीय राष्ट्रीय राजनीति में गाँधी जी के पदार्पण तथा उनके द्वारा अपने आन्दोलनों के श्रमिकों किसानों को शामिल करने से इस वर्ग में राजनैतिक सक्रियता बढ़ी। फस भी क्रांति तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्यवादी संगठन के गठन तथा 'लीग ऑफ नेशन' द्वारा अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के गठन से श्रमिकों की समस्याओं को अंतर्राष्ट्रीय महत्व मिला। भारत में राष्ट्रीय नेताओं ने 31 अक्टूबर 1920 को 'ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (AITUC) का गठन किया। जिसके पहले अध्यक्ष लाला लाजपत राय थे। राष्ट्रीय नेताओं में सी.आर.दास, वी.वी.गिरी, सरोजनी नायडू, जवाहर लाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस भी AITUC के अध्यक्ष बने। 1927 तक अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन के साथ 57 श्रमिक संघो का सम्बंध स्थापित हो गया। जिनकी सदस्य संख्या 150555 थी। 1926 में व्यापार संघ अधिनियम (Trade Union Act) यह स्वीकार किया गया कि हड़ताल संघों का वैध हथियार है।

1926–27 में अखित भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस में दो गुट हो गए। एक सुधारवादी दूसरी क्रांतिकारी। प्रथम गुट अपने को 'अन्तर्राष्ट्रीय फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन्स' से सम्बंध करना चाहता था,

दूसरा गुट 'लाल अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ से।' 'एटक' में साम्यवादी दृष्टिकोण के प्रबल होने के कारण एन. एम. जोशी के नेतृत्व में नरमदल इससे बाहर हो गया और 1929 में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन फेडरेशन की स्थापना की। 1929 में ही अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस में एक और विभाजन हुआ और साम्यवादियों ने 'लाल ट्रेड यूनियन कांग्रेस' की स्थापना की।

1934 में कांग्रेस समाजवादी दल के प्रयास से श्रमिक संगठनों में एकता स्थापित हो गई। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस, लाल ट्रेड यूनियन कांग्रेस, राष्ट्रीय फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन्स, एक हो गए।

1940 का दशक द्वितीय विश्व युद्ध के कारण उथल–पुथल भरा था। श्रमिक संगठन भी इससे अछूते न रहे। एम. एन. राय जो पहले साम्यवादी थे ने सरकार समर्थन दल 'इंडियन फेडरेशन ऑफ लेबर' बनाया। सरकार ने इस संगठन को 13,000 रूपये मासिक देना शुरू किया। वल्लभ भाई पटेल ने 'भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस' की स्थापना की। इस प्रकार श्रमिक आंदोलन राजनैतिक विचारधारा के आधार पर विभाजित हो गए।

14.3 साम्यवादी एवं समाजवादी आन्दोलन –

भारत में मार्क्सवादी विचारधारा का विकास रूसी क्रांति के पश्चात् हुआ। बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, लाहौर, मद्रास आदि औद्योगिक नगरों में साम्यवादी सभाओं का गठन हुआ। बंगाल में 'नवयुग' के सम्पादक मुजफ्फर अहमद, बम्बई में 'सोशलिस्ट' के सम्पादक एस.ए.डांगे, लाहौर में 'इंकलाब' के सम्पादक गुलाम हुसैन, मद्रास में सिंगारवेलू चेट्टियार ने कामगारों तथा कृषकों को समर्थन देकर साम्यवादी विचारों का प्रसार किया।

14.3.1 साम्यवादी दल–

1920 में एम.एन.राय ने ताशकन्द में भारतीय अप्रवासियों के साथ भारतीय साम्यवादी दल का गठन किया। 1924 में कानपुर षड़यन्त्र का केस समाप्त होते ही सत्यभक्त ने कहा कि उन्होंने भारतीय साम्यवादी दल का गठन कर दिया है और स्वयं उसके सचिव बन गए। भारत में साम्यवादी आन्दोलन के विकास की विभिन्न अवस्थओं में हुआ।

प्रथम चरण में साम्यवादी दल के सदस्यों पर पेशावर षड़यन्त्र, कानपुर षड़यन्त्र तथा मेरठ षड़यन्त्र के नाम से मुकदमें चलाये गये। मेरठ षड़यंत्र केस में 27 लोगों को दण्ड मिला। राष्ट्रवादी नेताओं का समर्थन मिला तथा मुकदमें में जवाहर लाल नेहरू, कैलाशनाथ **काटजू**, डा० एफ. एच. अन्सारी जैसे लोग साम्यवादियों की तरफ से पेश हुए। गाँधी जी भी साम्यवादियों से जेल में मिलने गए। साम्यवादियों को केन्द्रीय विधान सभा में भी कांग्रेसी सदस्यों का समर्थन मिला। 1934 तक भारत में साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव काफी बढ़ गया। सरकार ने जुलाई 1934 में भारतीय साम्यवादी दल को अवैध घोषित कर दिया।

1928 में साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के प्रभाव में कांग्रेस के वामपंथी और दक्षिणपंथी धड़ो पर प्रहार करने लगे। उन्होंने गाँधी जी के नेतृत्व को छोटे–बुर्जुवा–राष्ट्रवादी नेतृत्व कह कर निन्दा की तथा उन पर साम्राज्यवादी समर्थक होने का आरोप लगाया। धीरे–धीरे साम्यवादी राजनैतिक मुख्य धारा में अलग–थलग पड़ गये।

1935 में आर.सी. दत्त में अपने निबंध 'भारत में साम्राज्यवाद विरोधी जनता का मोर्चा' में सम्यवादियों को सलाह दी कि वे कांग्रेस में शामिल होकर दक्षिणपंथियों को बाहर करें।

द्वितीय विश्वयुद्ध के शुरू होने पर आरम्भ में साम्राज्यवादी शक्तियों का विरोध करने की नीति का अनुसरण किया। किन्तु हिटलर के रूस पर आक्रमण के पश्चात् साम्राज्यवादी युद्ध को लोकयुद्ध कहने लगे। भारत छोड़ो आन्दोलन के समय साम्यवादियों ने भेदियों की भूमिका निभाई।

सत्ता हस्तांतरण के समय साम्यवादियों का मत था कि भारत छोटे–छोटे बहुत से स्वायत्त राज्यों में बंट जाये। उन्होंने 1946 में कैबिनेट मिशन के समय एक प्रस्ताव रखा की भारत को 17 पृथक प्रभुसत्तापूर्ण राज्यों में बांट दिया जाये।

भारत में 1939–40 के बीच साम्यवादी आन्दोलन से अनेक लघु वामपंथी आन्दोलन का उदय हुआ।

फारवर्ड ब्लॉक – मार्च 1939 में सुभाषचन्द्र बोस ने इसकी स्थापना की थी। बोस ने कांग्रेस के नीति, उद्देश्य एवं कार्यक्रम सभी स्वीकार कर लिये थे, परन्तु कांग्रेस के 'हाई कमाण्ड' पर विश्वास नहीं था। 1947 में फारवर्ड ब्लॉक ने सत्ता हस्तान्तरण को 'झूठे शक्ति हस्तान्तरण' की संज्ञा दी।

क्रांतिकारी समाजवादी दल – इस संगठन की शुरूआत 1940 में हुई। इसका उद्देश्य अंग्रेजों को शक्ति द्वारा बाहर निकाल फेंकना था और भारत में साम्राज्यवाद की स्थापना करना था।

1939 में एन. दत्त मजूमदार ने भारतीय बोलशेविक दल की स्थापना की। इसी प्रकार 1942 में सौम्येन्द्र नाथ टैगोर ने क्रांतिकारी साम्यवाद दल का गठन किया। 1941 में अजित राय और इन्द्रसेन ने बोलशेविक लेनिनिस्ट दल की स्थापना की।

एम.एन. राय जो भारतीय साम्यवादी आन्दोलन के अग्रग्रामी थे ने 1940 में अतिवादी लोकतंत्र दल का गठन किया।

14.3.2 कांग्रेस साम्राज्यवादी दल–

भारतीय साम्राज्यवादी कांग्रेस में कुछ लोग मार्क्सवाद से प्रभावित थे। सुभाष चन्द्र बोस ने कहा कि कांग्रेस वामपंथी लोग न केवल साम्राज्यवाद विरोधी हैं अपितु वे अपने राष्ट्र जीवन का निर्माण एक समाजवादी आधार पर चाहते हैं। जुलाई 1931 ने जय प्रकाश नारायण, फूल प्रसाद वर्मा आदि ने बिहार समाजवादी दल की स्थापना की। 1933 में पंजाब समाजवादी दल बना और अक्टूबर 1934 में अखिल भारतीय कांग्रेस समाजवादी दल का गठन हुआ। यह संगठन कांग्रेस के भीतर रहकर कार्य करने तथा कांग्रेसी लीपियों को

प्रभावित करने का प्रयास करता है। कांग्रेस समाजवादी दल 1935 के अधिनियम को जन विरोधी माना। 1936 में कांग्रेस ने अपने चुनावी घोषणा में जनता की समाजिक और आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने का निश्चय किया। यह समाजवादियों का प्रभाव ही था। समाजवादियों ने भारत के बटवारें को कांग्रेस द्वारा स्वीकार करने की आलोचना की। किन्तु वह स्वयं भी विस्तृत आन्दोलन चलाने में असमर्थ रहे।

14.4 सारांश –

औपनिवेशिक परिस्थितियों के कारण भारत श्रमिक वर्ग को साम्राज्यवादी व्यवस्था तथा भारतीय एवं विदेशी पूँजीपतियों के शोषण का सामना करना पड़ता था। श्रमिक संघों का उद्देश्य श्रमिकों के जीवन स्तर में सुधार करना था। राजनैतिक उद्देश्यों, आदर्शों ने तथा श्रमिक संघों की बढ़ती हुई शक्ति ने श्रमिकों के संघर्ष को प्रभावित किया। 20वी शताब्दी में भारतीय श्रमिक राजनैतिक रूप से भी जागरूक हुआ तथा उन्होंने राष्ट्रीय महत्व के मुद्दे पर भी बढ़–चढ़कर भाग लिया।

14.5 शब्दावली –

साम्राज्यवाद – साम्राज्य के विस्तार की नीति।
वामपंथ– राजनीतिक विचारधारा जो समाज को बदलकर आर्थिक–सामाजिक समानता लाना चाहती हो।
समाजवाद– सत्ता का सामूहिक रूप होने का सिद्धांत।
साम्यवाद – एक सामाजिक और राजनैतिक विचारधारा जो वर्गहीन समाज बनाने का प्रयास करती है।
ट्रेड यूनियन – श्रमिकों का संघ।

14.6 स्वमूल्यांकन प्रश्न

निम्नलिखित कथन पर सही (✓) या गलत (✗) का चिन्ह लगाइए।

1. 1920 में ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना हुई।

2. एन. एम. जोशी ने अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन फेडरेशन की स्थापना की।

3. इंडियन फेडरेशन ऑफ लेबर को सरकार 20 हजार मासिक देती थी।

4. सरदार पटेल ने भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना की।

5. 1930 में अखिल भारतीय कांग्रेस समाजवादी दल का गठन हुआ।

उत्तर – (1) (✓), (2) (✓), (3) (✗), (4) (✓), (5) (✗)

14.7 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तकें

पी.एल. लखनपाल – हिस्ट्री ऑफ कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी।

एल.पी. सिन्हा – लेफ्ट विंग इन इंडिया।

एम.आर. मसानी – द कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया।

एस.ए. डांगे – ऑन द इंडियन ट्रेड यूनियन मूवमेंट।

14.8 अभ्यास कार्य प्रश्न –

1. श्रमिकों की समस्याओं का उल्लेख करें।
2. मिल ट्रेड यूनियनों का वर्णन करें।
3. भारत में साम्यवादी आन्दोलन के विकास का उल्लेख करें।
4. कांग्रेस में समाजवादी दल पर प्रकाश डालें।

इकाई 15 :– द्वितीय विश्व युद्ध का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

15.0 प्रस्तावना

15.1 उद्देश्य

15.2 द्वितीय विश्वयुद्ध

15.3 भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

15.4 सारांश

15.5 शब्दावली

15.6 स्वमूल्यांकन प्रश्न

15.7 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तकें

15.8 अभ्यास कार्य प्रश्न

15.0 प्रस्तावना –

बीसवीं सदी का पूर्वाद्ध ने दो महायुद्धों की विभीषिका देखी। जिनके प्रमाण विश्व के सभी देशों पर पड़े। इस समय भारत ब्रिटिश उपनिवेश था। सरकार ने 1939 में घोषणा कर दी कि भारत फासीवादी ताकतों के विरूद्ध युद्ध कर रहा है। जिसका भारत के राष्ट्रीय नेतृत्व ने विरोध किया। अंग्रेजी सरकार ने 20 लाख से अधिक सैनिक युद्ध में भेजे। देशी रियासतों ने युद्ध के लिए बड़ी मात्रा में धनराशि अंग्रेज सरकार को दी। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय 1943 में बंगाल में भीषण अकाल पड़ा, जिसमें लाखों लोगों की मौत हो गयी। भारत की सामरिक स्थिति, इसके द्वारा बड़ें हथियारों के उत्पादन तथा इसकी विशाल सेना ने जापान की प्रगति को रोक दिया। विश्वयुद्ध के चरम पर 25 लाख से अधिक भारतीय सैनिक पूरे विश्व में लड़ रहे थे। युद्ध की समाप्ति पर भारत दुनिया की चौथी सबसे बड़ी शक्ति के रूप में उभरा।

15.1 उद्देश्य :

–इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे कि –

- द्वितीय विश्व युद्ध।
- द्वितीय विश्व युद्ध का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव।
- द्वितीय विश्व युद्ध के समय श्रमिक आन्दोलन।

15.2 द्वितीय विश्वयुद्ध –

द्वितीय विश्वयुद्ध 1939–45 के बीच होने वाला विश्वव्यापी संघर्ष था। जिसमें धुरी राष्ट्र (जर्मनी, इटली, जापान) तथा मित्र राष्ट्र (ब्रिटेन, फ्रांस, संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस) शामिल थे। इस युद्ध में लगभग 50 मिलियन लोग मारे गये। द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रमुख कारणों में वर्साय की संधि की कठोर शर्ते, आर्थिक मंदी, तुष्टीकरण की नीति, जर्मन और जापान का सैन्यवाद, राष्ट्र संघ की विफलता आदि हैं। इसकी शुरूआत जर्मन के पौलेण्ड से होती है। इसके पश्चात् ब्रिटेन और फ्रांस ने जर्मन के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। 1942–44 में भारत की सीमा पर युद्ध के बादल मंडराने लगे। जब सिंगापुर और रंगून पर फासीवादी ताकतों का कब्जा हो गया और कलकत्ता पर बम गिराये जाने लगे, तब अफरा–तफरी का माहौल उत्पन्न हो गया। 1942 के जून और जुलाई में जमशेदपुर से 46 हजार लोग पलायन कर गये। पूर्वी यू.पी. तथा बिहार के 50 हजार लोग कानपुर पहुँचे। मलाया और बर्मा में ब्रिटिश सरकार ने गौरी बस्तियाँ खाली कर दी और स्थानीय लोगों को उनके भाग्य पर छोड़ दिया। इस घटनाक्रम से भारतीय जनमानस सशंकित हो उठा।

15.3 भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव –

द्वितीय विश्वयुद्ध ने भारतीय अर्थव्यवस्था को भारी होनी पहुँचाई। 1939 से 1945 के बीच बाह्य कारकों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को अत्याधिक प्रभावित किया, जिसके परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर आर्थिक अंसतुलन उत्पन्न हुआ।

सैन्य गतिविधियों में अत्यधिक व्यय के कारण भारतीय खजाने पर भारी दबाव पड़ा। जिसके परिणामस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था उच्च मुद्रास्फीति की शिकार हो गयी। भारतीय मुद्रा के मूल्य में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गिरावट आई। भारतीय मुद्रा के विनमय की समस्याओं का सामना करना पड़ा। भारत में मुद्रा स्फीति का सबसे बड़ा कारण स्टर्लिंग बैलेंस समस्या से समझा जा सकता है। स्टर्लिंग प्रतिभूतियों में 1600 करोड़ रूपये आर.बी.आई. के पास थे जिसके परिणामस्वरूप और अधिक कागजी मुद्रा बाजार में प्रवाहित हुई। जिससे अन्ततः अनियंत्रित मुद्रा स्फीति हुई।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विश्व में उपनिवेशवाद के विरोध में आवाजें उठने लगी। अंग्रेजों ने भी भारत में अपना शासन बनाये रखने की निरर्थकता को स्वीकार कर लिया।

1943 ई० में बंगाल में भीषण अकाल पड़ा जो भारतीयों के लिए विनाशकारी साबित हुआ। अंग्रेज सरकार ऐसी स्थिति में भी खाद्यान्न बहर भेजती रही जिससे अकाल के दुष्परिणाम भयंकर हो गये। द्वितीय विश्वयुद्ध में मूल्यों में वृद्धि हुई और मजदूरी कम रही। 1939–47 की अवधि में मजूदरों की वास्तविक मजदूरी में गिरावट दिखाई देती है। एक अनुमान के अनुसार 1939 की तुलना में 1947 मे वास्तविक मजदूरी में 14 प्रतिशत की कमी आई। द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले एक मजदूर के औसत परिवार की आय बम्बई में 50 रूपये मासिक, अहमदाबाद में 46 रूपये मासिक, शोलापुर में 40 रूपये मासिक, मद्रास में 37 रूपये मासिक थी। इस मासिक आय का मूल्य विश्वयुद्ध के दिनों में और भी घट गया। इस समय भारत में मजदूरों का अनेक प्रकार से शोषण होता है। औद्योगिक मजदूरों से भी बद्तर हालत कृषि मजदूर, बागान मजदूर, कोयला खान मजदूर की थी। इनकी मजदूरी बहुत कम और कार्य के घण्टे अधिक थे।

श्रमिको के अमानवीय शोषण के कारण 1940 में बहुत सी हड़ताले हुई। सितम्बर 1940 में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित किया, जिसमें साम्राज्यवाद और फासिस्टवाद के प्रति सहानुभूमि प्रदर्शित करने को अस्वीकार किया गया। उन्होंने कहा कि जिस युद्ध से भारत में स्वतंत्रता स्थापित न हो और श्रमिक वर्ग को कोई लाभ न हो, उस युद्ध में सम्मिलित होने से क्या फायदा।

15.4 सारांश –

अंग्रेज सरकार ने पूँजीगत उद्योगों के निर्माण पर कोई ध्यान नहीं दिया। विश्वयुद्ध के दौरान भारतीय माल की माँग काफी बढ़ गई थी। भारतीय उद्योगों को अपनी क्षमता से अधिक दिन–रात काम करना पड़ा। युद्ध की जरूरतों को पूरा करने के लिए मशीनरी और उपकरणों का बहुत उपयोग हुआ। इससे टूट–फूट की समस्या बढ़ी, जिसकी क्षतिपूर्ति नहीं होती थी। युद्ध के पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था क्षत–विक्षत अर्थव्यवस्था बनकर रह गयी।

15.5 शब्दावली

मुद्रास्फीति– वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि।

प्रतिभूतियाँ – सरकारी ऋणपत्र/साख–पत्र।

उपनिवेशवाद – एक देश का दूसरे देश पर नियंत्रण।

तुष्टीकरण – तुष्ट करना।

15.6 स्वमूल्यांकन प्रश्न –

निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) गलत (✗) चिन्ह लगायें।

1. द्वितीय विश्वयुद्ध की शुरूआत 1939 में हुई।
2. द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् उपनिवेशवाद का विरोध बढ़ा।
3. 1940 में बंगाल में भीषण अकाल पड़ा।
4. द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास हुआ।